संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

मूल्य : रु. ६/-
अंक : १९९
जुलाई २००९

गुरुपूर्णिमा विशेषांक
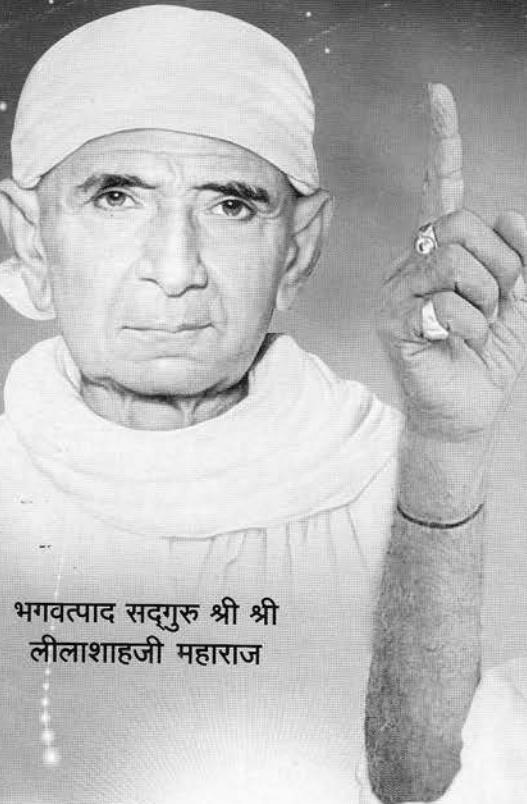
भगवत्पाद सद्गुरु श्री श्री
लीलाशाहजी महाराज
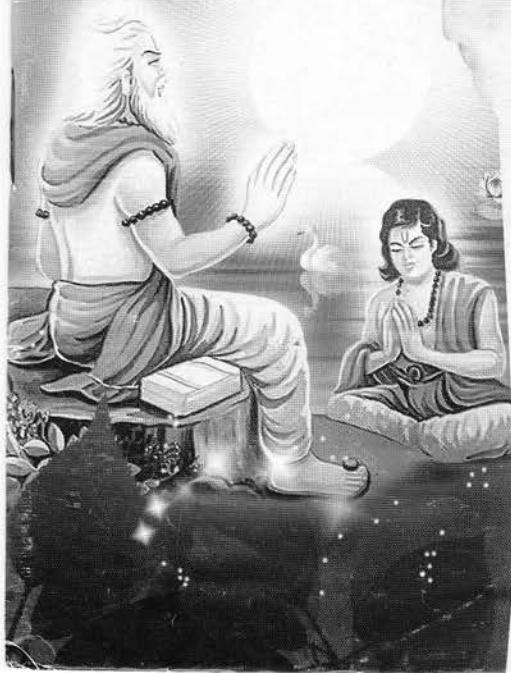
परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू

एक सद्गुरु ही ऐसे हैं जो हमारा वास्तविक सर्वांगीण विकास कर सकते हैं।

बाल संस्कार केन्द्र द्वारा ग्रीष्मकालीन छुट्टियों में आयोजित विद्यार्थी उज्ज्वल भविष्य निर्माण शिविरों में योगाभ्यास, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि करते हुए विद्यार्थी ।
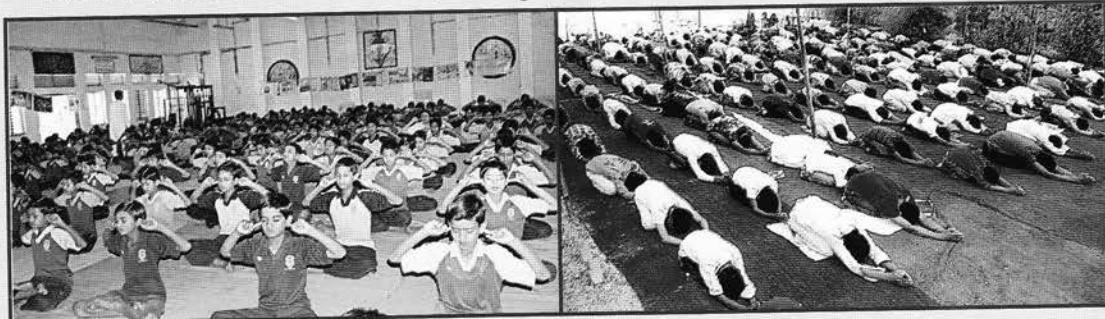
यौगिक प्रयोग सीखते अमरावती (महा.) के विद्यार्थी तथा
योगासनों का अभ्यास करते आमेट (राज.) के विद्यार्थी ।

सूर्यनारायण को अर्घ्य देते हुए साकोली (महा.) के विद्यार्थी तथा नैतिक शिक्षा पर
आधारित सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए दिल्ली के विद्यार्थी ।
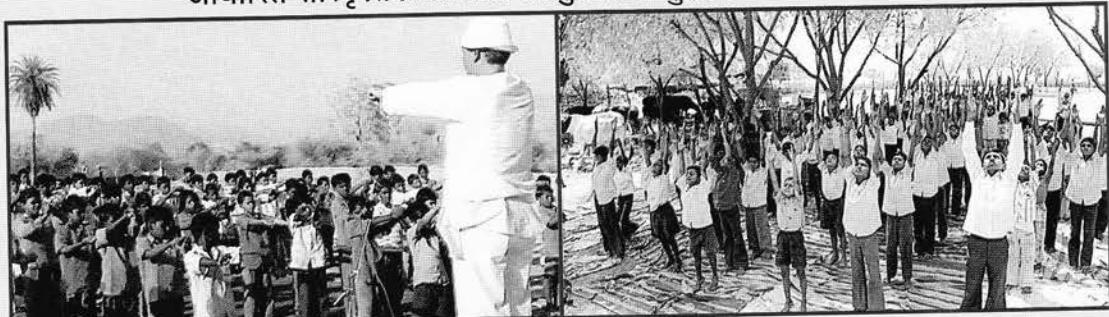
भीमाणा, जि. पाली (राज.) तथा रावेर, जि. धुलिया (महा.) में योगाभ्यास करते छात्र ।

हास्य-प्रयोग करते हुए करनापुर, जि. अनगुल (उड़ीसा) के विद्यार्थी तथा
ध्यान की गहराइयों में तल्लीन होन्नावर, जि. उत्तर कन्नड़ (कर्नाटक) के विद्यार्थी ।

ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

हिन्दी, गुजराती, मराठी, उड़िया, तेलगू, कन्नड़ व अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित

वर्ष : २० अंक : १९९
जुलाई २००९ मूल्य : रु. ६-००
आषाढ़-श्रावण वि.सं. २०६६

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २२५/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(सभी भाषाएँ)

(१) वार्षिक : रु. ३००/-
(२) द्विवार्षिक : रु. ६००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. १५००/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	द्विवार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	७०	१३५	३२५
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 40	US $ 80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अपनी राशि मनीऑर्डर या डिमांड ड्राफ्ट (अमदावाद में देय) द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

संपर्क पता : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५ (गुजरात).
फोन नं. : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद - ३८०००५ (गुजरात).
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, ''सुदर्शन'', मिठाखली अंडरब्रीज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद- ३८०००९. (गुजरात)
सम्पादक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा, श्रीनिवास

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रमणिका

विभिन्न टीवी चैनलों पर पूज्य बापूजी का सत्संग

संस्कार	A2Z NEWS	IBN7	RAFTAAR news	care WORLD	MA TV (यूरोप)
रोज सुबह ७-५० बजे (सोम से शुक्र)	रोज सुबह ७-३० बजे	रोज सुबह ६.१० बजे	रोज सुबह ८ बजे व रात १० बजे	रोज सुबह ७-०० बजे	दोपहर १२-३० बजे (बुध व शनि)

दुर्जन की करुणा बुरी, भलो साँईं को त्रास

- पूज्य बापूजी

वसिष्ठजी बोलते हैं : ''हे रामजी ! यदि असाधु का संग साधुपुरुष भी करता है तो साधु भी असाधु होने लगता है और यदि साधुओं का संग असाधु कर ले तो असाधु भी साधु होने लगता है।''

जो परम साध्य साध रहे हैं वे 'साधु' हैं और जो अस्थिर संसार के पीछे समय लगा रहे हैं वे 'असाधु' हैं। असाधु पुरुषों का अधिक समय हम संग करते हैं तो हमको भी लगता है कि 'अपनेको भी इतना तो करना ही चाहिए, थोड़ा तो कर लेना चाहिए, यहाँ मकान बना लेना चाहिए, यहाँ से इतना ऐसा कर लेना चाहिए, यह मौका नहीं छोड़ना चाहिए। २-५ घंटे काम किया तो रोज के १०० रुपये मिलते हैं, ले लेने चाहिए।' अरे, रोज के लाख रुपये भी तुम्हारे काम के नहीं हैं।

तो हम पामर लोगों के संग में आते हैं इसीलिए अपने-आपको धोखा देते हैं। जब आप गहराई में जाओगे, तब आपको पता चलेगा कि हमने २५ साल ऐसे ही गँवा दिये, ४० साल ऐसे ही गँवा दिये... । आपको जब साक्षात्कार होगा तो पीछे के जीवन पर आपको आश्चर्य होगा, ग्लानि होगी कि 'कितना खजाना मेरे पास था और मैंने कौड़ियों को गिनने और रखने में ही अपना जीवन बर्बाद कर दिया। हाय ! मैंने वह किया जो अंधा भी न करे।' राजा जनक जैसा व्यक्ति आश्चर्य से भर जाता है : 'अहो, गुरु आश्चर्य ! परम आश्चर्य !' वह सम्राट था, जैसा-तैसा व्यक्ति तो नहीं था जो उसको छोटी-छोटी बात पर आश्चर्य हो जाय। जनक बोलते हैं : 'अहो, मैं इतना समय मोह में व्यतीत कर रहा था !' जिस समय आपको अपना खजाना मिलता है न, उस समय आप खूब आश्चर्यमय हो जाते हैं। आश्चर्यमय हो जाना इसीका नाम 'समाधि' है।

निज स्वरूप का ज्ञान दृढ़ाया,
ढाई दिवस होश न आया ॥

होश कैसे आयेगा ? क्या थे ? शक्करवाले सेठ... यह, वह... और अब क्या हैं ! इतने दिन क्या झख मार रहे थे ? हाय-रे-हाय ! जैसे नितांत अँधेरे में से आदमी एकदम प्रकाश में आ जाय तो उसकी आँखें बंद हो जाती हैं, ऐसे ही परम प्रकाश परमात्मा का जब साक्षात्कार होता है तो लगता है कि 'हाय-रे-हाय ! हम क्या कर रहे थे और अपने को चतुर मान रहे थे।' हम जब दुकान पर थे तो अपने को बेवकूफ थोड़े ही मान रहे थे ! अभी आप दुकान में हो, डॉक्टर हो, कोई वकील है, कोई नेता है, कोई कुछ है तो अपने बारे में ऐसा थोड़े ही मानते हो कि हम मूर्खता कर रहे हैं। मान रहे हो कि 'हम ठीक कर रहे हैं। बिल्कुल सच्चाई का, परिश्रम का, ईमानदारी का पैसा लेकर अपन लोगों की थोड़ी सेवा कर रहे हैं। हम बहुत अच्छा कर रहे हैं।' जब परमात्मा का साक्षात्कार होगा तब पता चलेगा कि ये बेवकूफी के दिन थे। महापुरुष अपनी उस महिमा को जानते हैं, ईश्वर की उस गरिमा को जानते हैं इसीलिए हमारे परम हितैषी होते हैं और जब हम नादानी करते हैं तो हम पर थोड़ा-बहुत खीझ भी जाते हैं। खीझ जाते हैं उस समय लगता है हमको ताने मार रहे हैं लेकिन ये कोई दुश्मनी के ताने

नहीं, परम करुणा के ताने हैं, परम कृपा के ताने हैं और ऐसे ताने यदि तुमको ताने लगते हैं तो उनको धन्यवाद ! नारदजी भी डाँटकर, ताने मारकर सामान्य लोगों का, राजा-महाराजाओं का कल्याण करते थे। हमारे गुरुजी भी डाँट का उपयोग करते थे। कबीरजी ने भी ऐसे ताने लोगों को मारे तो लोग ऊब जाते थे। तब कबीरजी को साखी बनानी पड़ी होगी :

दुर्जन की करुणा बुरी, भलो साँईं को त्रास।

हम तुम्हें त्रास भी दें, तुम्हें डाँटें, तुम पर अपना गुरुपद का वीटो पावर भी चला दें फिर भी तुम भूलकर भी हमारा दामन मत छोड़ना क्योंकि -

दुर्जन की करुणा बुरी, भलो साँईं को त्रास।
सूरज जब गर्मी करे, तब बरसन की आस ॥ ❐

मधुमय मेरे गुरुदेव हैं...

मधुमय मेरे गुरुदेव हैं, है ज्ञान उनका मधुभरा।
मधुरिम मधुर वाणी से उनकी, तृप्त हो सारी धरा ॥
मधुमय मेरे गुरुदेव हैं...

मधुमय गुरु का दिव्य दर्शन, दृष्टि उनकी मधुमयी।
छलका करे मधुरस, पिलाते जाम मधु के हर कहीं ॥
मधुमयी गुरु की कृपा से, हुए धन्य बहु नारी नरा।
मधुमय मेरे गुरुदेव हैं...

गुरुद्वार मधु से पूर्ण गुरु का, मधु बरसता हर कहीं।
मधुमय लताएँ वृक्ष पुष्प, भरे हुए मधु माधुरी ॥
मधुवृष्टि से आश्रम चतुर्दिक, है सुशोभित मनहरा।
मधुमय मेरे गुरुदेव हैं...

मधु से भरे गुरुचरण हैं, जो ध्यान में मधु छाँटते।
मधुमय गुरु के करकमल, मधुमुक्ति सबको बाँटते ॥
मधुभरा मुख अरविंद है, मधु सदा करता है झरा।
मधुमय मेरे गुरुदेव हैं...

मधु से भरी गुरुकृपा है, माधुर्य हैं सब पा रहे।
मधुमय सरस हरि ॐ की, मधुध्वनि सभी गुंजा रहे।
है मधुभरा गुरुनाम, आसाराम पूर्णाशा करा।
मधुमय मेरे गुरुदेव हैं...

- ओमप्रकाश मिश्र

सबसे बड़ी बात

- पूज्य बापूजी

जब मुसीबत पड़ती है तब आपके अचेतन मन में क्या होता है ? यह जरा देखना यार ! जब मार पड़ती है तब 'हाय !...' निकलती है कि 'हरि !...' निकलता है, 'डॉक्टर साहब !... इंजेक्शन...' निकलता है कि **'शिवोऽहम्... सब मिथ्या है'** यह निकलता है या इससे अलग कुछ निकलता है। यदि कचरा निकलता है तो जल्दी से बुहारकर सरिता में बहा देना क्योंकि सरिता में बाढ़ आयी है, बह जायेगा। किसका चिंतन निकलता है ? आकृति में विकृति दिखती है कि आकृति में सत्यस्वरूप दिखता है ? आकृति में निराकार दिखता है या निराकार में आकृति दिखती है ? यह आप अपने अंदर गहरा चिंतन करना। गायत्री का जप करते हैं तो संसार का कुछ माँगने के लिए करते हैं कि उससे माँगते हैं - **धियो यो नः प्रचोदयात्**। हमारी बुद्धि पवित्र हो। पवित्र बुद्धि में ही परमात्म-साक्षात्कार की क्षमता है।

गायत्री जपना या न जपना कोई बड़ी बात नहीं। धनवान होना या निर्धन होना बड़ी बात नहीं लाला ! लाखों निर्धन भटकते हैं और हजारों-लाखों धनवान भी भटकते हैं। मंदिरों में जाना या फिल्मों में जाना कोई बड़ी बात नहीं। दूसरों के दुःख में आँसू बहाना और 'हाय-हाय !...' करके रोना कोई बड़ी बात नहीं। दूसरों को सुखी देखकर ईर्ष्या करना या दूसरों को सुखी देखकर सुखी हो जाना कोई बड़ी बात नहीं। देवता होकर स्वर्ण के विमान में घूमना या नरक में पापियों के साथ यातना सहना भी बड़ी बात नहीं। महाराज ! स्वर्ग में अमृतपान भी कोई बड़ी बात नहीं है। अमेरिका जाना और लौटकर आना या वहीं ग्रीनकार्ड लेकर बैठ जाना भी कोई बड़ी बात नहीं है।

जहाँ में उसने बड़ी बात कर ली।
जिसने अपने-आपसे मुलाकात कर ली ॥ ❐

शिक्षा और दीक्षा

शिक्षा मानव-जीवन में सौंदर्य प्रदान करती है, कारण कि शिक्षित व्यक्ति की माँग समाज को सदैव रहती है। इस दृष्टि से शिक्षा एक प्रकार का सामर्थ्य है। यद्यपि सामर्थ्य सभीको स्वभाव से प्रिय है पर उसका दुरुपयोग मंगलकारी नहीं है। अतः शिक्षा के साथ-साथ दीक्षा अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा का सदुपयोग दीक्षा से ही संभव है। दीक्षित मानव की प्रत्येक चेष्टा लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही होती है। शिक्षा अर्थात् ज्ञान, विज्ञान एवं कलाओं के द्वारा जो शक्ति प्राप्त हुई है, उसका दुरुपयोग न हो इसलिए शिक्षित मानव का दीक्षित होना अनिवार्य है।

मानव-जीवन कामना और माँग का पुंज है। कामना मानव को पराधीनता, जड़ता एवं अभाव की ओर गतिशील करती है और माँग स्वाधीनता, चिन्मयता एवं पूर्णता की ओर अग्रसर करती है। माँग की पूर्ति एवं कामनाओं की निवृत्ति में ही मानव-जीवन की पूर्णता है। मानवमात्र का लक्ष्य एक है। इस कारण दीक्षा भी एक है। दीक्षा के दो मुख्य अंग हैं - दायित्व और माँग। प्राकृतिक नियमानुसार दायित्व पूरा करने पर माँग की पूर्ति स्वतः होती है। दायित्व पूरा करने का अविचल निर्णय तथा माँग-पूर्ति में अविचल आस्था रखना दीक्षा है। यह दीक्षा प्रत्येक वर्ग, समाज, देश, मत, सम्प्रदाय, मजहब आदि के मानव के लिए समानरूप से आवश्यक है। इस दीक्षा के बिना कोई भी मानव मानव नहीं हो सकता और मानव हुए बिना जीवन अपने लिए, जगत के लिए और उसके लिए जो सर्व का आधार तथा प्रकाशक है, उपयोगी नहीं हो सकता।

शिक्षा सामर्थ्य है और दीक्षा प्रकाश। सामर्थ्य का उपयोग अंधकार में करना अपने विनाश का आह्वान करना है। शिक्षा का प्रभाव शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि पर होता है और दीक्षा का प्रभाव अपने पर होता है अर्थात् कर्ता पर होता है करण पर नहीं। करण कर्ता के अधीन कार्य करते हैं। अतः शिक्षा का उपयोग दीक्षा के अधीन होना चाहिए। किसी भी मानव को यह अभीष्ट नहीं है कि सबल उसका विनाश करें, अतः बल का दुरुपयोग न करने का व्रत कर्तव्य-पथ की दीक्षा है।

यद्यपि शिक्षा बड़े ही महत्त्व की वस्तु है पर दीक्षित न होना भारी भूल है। दीक्षित हुए बिना शिक्षा के द्वारा घोर अनर्थ भी हो जाते हैं। अशिक्षित मानव से उतनी क्षति हो ही नहीं सकती, जितनी दीक्षारहित शिक्षित से होती है। शिक्षित मानव का समाज में बहुत बड़ा स्थान है, कारण कि उसके सहयोग की माँग समाज को सदैव रहती है। इस दृष्टि से शिक्षित का दीक्षित होना अत्यंत आवश्यक है।

दीक्षा के बिना माँग अर्थात् लक्ष्य क्या है और उसकी प्राप्ति के लिए दायित्व क्या है, इसका विकल्परहित निर्णय संभव नहीं है, जिसके बिना सर्वतोमुखी विकास संभव नहीं है। दीक्षा का बाह्य रूप भले ही भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रतीत हो किंतु उसका आंतरिक स्वरूप तो कर्तव्यपरायणता, असंगता एवं शरणागति में ही निहित है। इतना ही नहीं, कर्तव्य की पूर्णता में असंगता और असंगता की परावधि में शरणागति स्वतः आ जाती है। कर्तव्यपरायणता के बिना (शेष पृष्ठ ७ पर)

मंत्रदीक्षा से जीवन-परिवर्तन

- स्वामी श्री शिवानंदजी सरस्वती

वेदों तथा उपनिषदों के प्राचीनकाल में आत्मानुभवी महात्माओं तथा ऋषियों को ईश्वर-सम्पर्क से जो सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रहस्य प्राप्त हुए, मंत्र उन्हींके विशेष रूप हैं। ये पूर्ण अनुभव के गुप्त देश में पहुँचानेवाले निश्चित साधन हैं। मंत्र के सर्वश्रेष्ठ सत्य का ज्ञान जो हमें परम्परा से प्राप्त हो रहा है, उसे प्राप्त करने से आत्मशक्ति मिलती है। गुरु-परम्परा की रीति के द्वारा ये मंत्र अब तक, इस कलियुग के समय में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आये हैं।

मंत्रदीक्षा पानेवाले के अंतःकरण में एक बड़ा परिवर्तन होना आरम्भ हो जाता है। दीक्षा लेनेवाला इस परिवर्तन से अनभिज्ञ रहता है क्योंकि उस पर मूल अज्ञान का पर्दा अब भी पड़ा हुआ है। जैसे एक गरीब आदमी को, जो अपनी झोंपड़ी में गहरी नींद में सोया हो, चुपचाप ले जाकर बादशाह के महल में सुंदर कोच (गद्देदार बिस्तर) पर लिटा दिया जाय तो उसको इस परिवर्तन का कोई ज्ञान न होगा क्योंकि वह गहरी नींद में सो रहा था। भूमि में बोये हुए बीज की भाँति आत्मानुभव आत्मज्ञानी को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाता है। पूर्णरूप से फूलने-फलने के पूर्व जिस प्रकार बीज विकास के मार्ग में भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का अनुभव करता है और बीज से अंकुर, पौधा, वृक्ष और फिर पूरा वृक्ष बन जाता है, उसी प्रकार साधक को आत्मानुभव में सफलता प्राप्त करने के लिए निरंतर उत्साहपूर्वक प्रयत्न करना आवश्यक है। **इस अवसर पर केवल साधक पर ही पूर्णतया उत्तरदायित्व है और गुरु में उसकी पूर्ण भक्ति और अचल विश्वास होने पर इस कार्य में उसको निःसंदेह गुरु की सहायता और कृपा मिलेगी।** जिस प्रकार समुद्र में रहनेवाली सीप स्वाति नक्षत्र में बरसनेवाले जल की बूँद की उत्कण्ठा तथा धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करती है और स्वाति की बूँद मिलने पर उसको अपने में लय कर अपने साहस और प्रयत्न से अमूल्य मोती बना लेती है। उसी प्रकार साधक श्रद्धा और उत्कण्ठा से गुरुदीक्षा की प्रतीक्षा करता है और कभी शुभ अवसर पर उसे प्राप्त करके अपनी धारणा का पोषण करता है और प्रयत्न तथा नियम पूर्वक साधन करके उससे ऐसी अद्भुत आत्मिक शक्ति प्राप्त करता है, जो अविद्या तथा अज्ञान को छिन्न-भिन्न कर मुक्तिद्वार का रास्ता स्पष्टरूप से खोल देती है। मंत्रदीक्षा द्वारा आप सर्वोच्च तथा सर्वश्रेष्ठ वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जिसको पाकर आप सब कुछ पा जाते हैं और जिसको जानकर सब कुछ जान जाते हैं। फिर अन्य कोई वस्तु जानने तथा पाने योग्य शेष नहीं रह जाती। मंत्रदीक्षा द्वारा आपको इस बात का पूर्ण ज्ञान तथा अनुभव हो जाता है कि आप मन या बुद्धि नहीं हैं वरन् आप सच्चिदानंद परम प्रकाश और परमानंदस्वरूप हैं। सद्गुरु की अनुकम्पा से आपको भगवत्प्राप्ति होकर परम शांति उपलब्ध हो। ❐

अर्धांगिनी बढ़ेगी तो केवल मकान तक।
परिवार के सब लोग चलेंगे श्मशान तक।
बेटा भी हक निभायेगा बस अग्निदान तक।
पर सद्गुरु निभायेंगे ब्रह्मज्ञान तक॥

और ऐसा ब्रह्मज्ञान जीवात्मा को अपने-आप हर परिस्थिति का बाप बना देता है।

सेवा कर निर्बंध की...

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

वेदांत शास्त्र में एक दृष्टांत आता है - किसी सज्जन आदमी ने कुछ कर्ज लेकर दुकानदारी शुरू की । दुकानदारी में लुच्चे-लोफरों से पाला पड़ गया और दुकान का दिवाला निकल गया । अब लेनदार उससे माँगने लगे तो उस सज्जन ने हाथाजोड़ी की कि 'मैं धंधा-नौकरी करके आपकी रकम चुका दूँगा ।' उसने धंधा-नौकरी की पर इतना मिलता था कि पेट ही मुश्किल से भरता था तो जिनका कर्ज था वे डाँटते रहते थे ।

दूसरे किसी आदमी ने उससे कहा : ''तुम्हें कर्ज चुकाना है तो इस चार रुपये की नौकरी से थोड़े ही कर्ज पूरा होगा ! अगर कर्ज चुकाना है तो किसी बड़े सेठ के पास जाओ । उनका काम करो और तनख्वाह मत लो, सेवाभाव से काम करो । सेवा में ऐसी ताकत है कि तुम उनके हो जाओगे । जब तुम उनके हो जाओगे तो तुम्हारी इज्जत उनकी इज्जत हो जायेगी, तुम्हारा कर्ज उनका कर्ज हो जायेगा, तुम्हारी खुशी उनकी खुशी हो जायेगी ।'' यह बात उसको अच्छी लगी । उसने जाकर एक अच्छे, खानदान सेठ के यहाँ पेढ़ी पर काम किया । वह काम ईमानदारी से करता था और सेठ से केवल भोजन आदि लेता था, बाकी खर्च नहीं लेता था । एक, दो, चार, छः महीने बीते, सेठ पर बड़ा असर पड़ा । सेठ ने ऊपर का पद देते-देते उसे अपना मुनीम बना दिया । जो लेनदार अपनी रकम माँगते थे उनको पता चला कि अब वह अच्छी गद्दी पर है तो दे देगा । उनमें भी शांति आ गयी । एक दिन वह सज्जन आदमी बाजार में गया तो उन पुराने लेनदारों ने उसको घेरकर बुरी तरह डाँटा कि 'अभी तो अच्छी पेढ़ी में है, फिर भी नहीं दे रहा है... ।' डाँटा तो उसका मुँह लटक गया और वह बड़े उदास मन से सेठ के पास गया । सेठ ने पूछा : ''मुँह क्यों लटका है ?''

''... ... इस तरह मुझ पर कर्ज था, इसलिए उन्होंने मुझे डाँटा ।'' इस प्रकार उसने बता दिया तो सेठ ने कहा : ''भैया ! तू बावरा है । मेरे पास रहता है और तू दुःखी ! तू मुझे कहता तो मैं दे देता । अब तू मेरे को बता कि मैं जो फैसला करूँगा वह तुझे कबूल है ?''

बोला : ''हाँ, कबूल है ।''

सेठ ने लेनदारों को बुलाया और उनसे कहा कि ''तुम जो भी कुछ माँगते हो, उसमें मैं जो फैसला करूँगा वह तुम्हें कबूल होगा ?''

लेनदार बोले : ''हाँ ।''

ब्याज माफ करा दिया और बाकी रकम दे दी । यह मैंने जो कथा कही, यह वेदांत शास्त्र की, वेदांत की किताबों की कथा है । यह सत्य को समझाने के लिए कल्पी गयी है । अब सेठ कौन है, लेनदार कौन हैं और सज्जन आदमी कौन है ?

जीव तो सज्जन है लेकिन इस संसार में आता है और काम, क्रोध आदि लुटेरों से दोस्ती करके अपना पूरा-का-पूरा आत्मधन खो देता है, आध्यात्मिक योग्यता क्षीण कर अपना दिवाला निकाल देता है ।

अब दिवालिया होकर वह किसी पुजारी के

पास गया और कहा : ''दया कर दो महाराज ! यह कर दो - वह कर दो...'' तो उसने कहा : ''ले यह घंटी, बजा और इस भगवान को, इस देवी को, उन देवताओं को रिझा ।...''

उससे जो कुछ पुण्य हुआ उस पुण्य से तो गुजारा ही हुआ, कर्ज नहीं चुका पाया । तो किसी दूसरे व्यक्ति ने कहा कि ''किसी उदारहृदय बड़े सेठ के पास जा । उदारहृदय सेठ वह पेढ़ीदार है, जिसको ब्रह्मवेत्ता कहते हैं। उनके पास जा लेकिन भजन करके भजन का फल मत माँग, सेवा करके सेवा का फल मत माँग, तू उन्हींका हो जा । जब तू उन्हींका हो जायेगा तो ये काम, क्रोध आदि लुटेरों ने जो घाटा डाला है और समय तथा प्रकृति जो तुझसे कर्ज माँग रही है, वह जब उन ब्रह्मवेत्तारूपी सेठ को पता चलेगा तो कई जन्मों तक वे ब्रह्मवेत्तारूपी सेठ बीच में पड़कर प्रकृति का और काल का कर्ज पूरा करके तुझे प्रकृति से पार के अकाल तत्त्व में जगा देंगे ।''

छोटे-मोटे की गुलामी या चार रुपयों की नौकरी करोगे तो उससे क्या होगा -

बंधे को बंधा मिले, छूटे कौन उपाय ।
सेवा कर निर्बंध की, पल में देय छुड़ाय ॥ ❐

(पृष्ठ ४ 'शिक्षा और दीक्षा' का शेष) स्वार्थभाव का, असंगता के बिना जड़ता का और शरणागति के बिना सीमित अहंभाव का सर्वांश में नाश नहीं होता। स्वार्थभाव ने ही मानव को सेवा से, जड़ता ने मानव को चिन्मय जीवन से एवं सीमित अहंभाव ने प्रेम से विमुख किया है। स्वार्थभाव, जड़ता एवं सीमित अहंभाव का नाश दीक्षा में ही निहित है।

शिक्षा मानव को उपयोगी बनाती है और दीक्षा सभीके ऋण से मुक्त करती है। ऋण से मुक्त हुए बिना शांति, स्वाधीनता तथा प्रेम के साम्राज्य में प्रवेश नहीं होता, जो वास्तविक जीवन है। ❐

साधना हेतु अमृतकाल : चतुर्मास

(चतुर्मास : ३ जुलाई से २९ अक्टूबर)

चतुर्मास के चार महीने भगवान विष्णु योगनिद्रा में रहते हैं, इसलिए यह काल साधकों, भक्तों, उपासकों के लिए सुवर्णकाल माना गया है। इस काल में जो कोई व्रत, नियम पाला जाता है वह अक्षय फल देता है, इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को यत्नपूर्वक चतुर्मास में कोई नियम अवश्य लेना चाहिए। श्रीहरि की आराधना के लिए यह पवित्र समय है।

चतुर्मास में भगवान नारायण जल में शयन करते हैं, अतः जल में भगवान विष्णु के तेज का अंश व्याप्त रहता है। इसलिए प्रातः सूर्योदय से पूर्व उठकर भगवद्-चिंतन, नाम-सुमिरन करते हुए स्नान करना समस्त तीर्थों से भी अधिक फल देता है। जो मनुष्य जल में तिल और आँवले का मिश्रण अथवा बिल्वपत्र डालकर उस जल से स्नान करता है, उसमें दोष का लेशमात्र भी नहीं रह जाता। चतुर्मास में बाल्टी में कुछ बिल्वपत्र डालकर 'ॐ नमः शिवाय' का ४-५ बार जप करके स्नान करें तो विशेष लाभ होता है। इससे वायुप्रकोप दूर होता है और स्वास्थ्य की रक्षा होती है लेकिन भगवत्प्रीत्यर्थ स्नान करें, यह भक्ति हो जायेगी।

जो सम्पूर्ण चतुर्मास नमक का त्याग करता है, उसके सभी पूर्तकर्म (परोपकार एवं धर्म संबंधी कार्य) सफल होते हैं।

चतुर्मास में जीवों पर दया करना विशेष धर्म

है तथा अन्न-जल व गौओं का दान, प्रतिदिन वेदपाठ और हवन - ये सब महान फल देनेवाले हैं। अन्नदान सबसे उत्तम है। इस मास में श्रद्धापूर्वक प्रिय वस्तु का त्याग करनेवाला अनंत फल का भागी होता है। प्रिय वस्तु का त्याग करने से आसक्ति से मुक्त होकर अनंत फल- अनंत सुख का भागी होता है। अनंत तो है परमात्मा !

सद्धर्म, सत्कथा, सत्पुरुषों की सेवा, संतों के दर्शन, भगवान विष्णु का पूजन आदि सत्कर्मों में संलग्न रहना और दान में अनुराग होना - ये सब बातें चतुर्मास में अत्यंत कल्याणकारी बतायी गयी हैं। चतुर्मास में दूध, दही, घी एवं मट्ठे का दान महाफल देनेवाला होता है। जो चतुर्मास में भगवान की प्रीति के लिए विद्या, गौ व भूमि का दान करता है, वह अपने पूर्वजों का उद्धार कर देता है। चतुर्मास के चार महीनों में भूमि पर शयन, ब्रह्मचर्य का पालन, उपवास, मौन, जप, ध्यान, दान-पुण्य आदि विशेष लाभप्रद होते हैं।

चतुर्मास में ताँबे के पात्र में भोजन विशेषरूप से त्याज्य है। इन दिनों धातु के पात्रों का त्याग करके पलाश के पत्ते में भोजन करना पुण्यप्रदायक है। चतुर्मास में काला व नीला वस्त्र पहनना हानिकारक है। चतुर्मास में परनिंदा का विशेषरूप से त्याग करें। परनिंदा को सुननेवाला भी पापी होता है। परनिंदा महान पाप है, महान भय है, महान दुःख है। परनिंदा से बढ़कर दूसरा कोई पातक नहीं है।

यदि धीर पुरुष चतुर्मास में नित्य परिमित अन्न का भोजन करता है तो वह सब पातकों का नाश करके वैकुंठ धाम को पाता है। चतुर्मास में केवल एक ही अन्न का भोजन करनेवाला मनुष्य रोगी नहीं होता। एक समय भोजन करनेवाला 'द्वादशाह यज्ञ' का फल पा लेता है। जो मनुष्य चतुर्मास में केवल दूध पीकर अथवा फल खाकर रहता है, उसके सहस्रों पाप तत्काल विलीन हो जाते हैं।

यदि मनुष्य पंद्रह दिन में एक दिन संपूर्ण उपवास करे तो वह शरीर के दोषों को जला देता है और चौदह दिनों में भोजन का जो रस बना है उसे ओज में बदल देता है। इसलिए एकादशी के उपवास की महिमा है। चतुर्मास की तो दोनों पक्षों की एकादशियाँ रखनी चाहिए।

किसी कारण से यदि चतुर्मास के चारों महीनों में नियमों का पालन करना संभव न हो तो केवल कार्तिक मास (५ अक्टूबर से २ नवम्बर) में ही इन नियमों का पालन करें।

चतुर्मास में शादी-विवाह और सकाम यज्ञ नहीं होते। ये चार मास तपस्या करने के हैं।

जो मनुष्य जप, नियम, व्रत आदि के बिना ही चतुर्मास व्यतीत करता है वह मूर्ख है और जो इन साधनों द्वारा इस अमूल्य काल का लाभ उठाता है वह मानो अमृतकुंभ ही पा लेता है। भारतीय संस्कृति की यह कितनी सुंदर व्यवस्था है कि विभिन्न ऋतुओं, मासों में विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा जीव को अपने भौतिक कल्याण के साथ-साथ आध्यात्मिक कल्याण का सुअवसर भी प्राप्त हो जाता है। □

यज्ञोपवीत से स्वास्थ्य-लाभ

यज्ञोपवीत धारण करने से हृदय, आँतों व फेफड़ों की क्रियाओं पर अत्यंत अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

मल-मूत्र त्याग के समय कान पर कसकर जनेऊ लपेटने से हृदय मजबूत होता है। आँतों की गतिशीलता बढ़ती है, जिससे कब्ज दूर होता है। मूत्राशय की मांसपेशियों का संकोचन वेग के साथ होता है। जनेऊ से कान के पास की नसें दब जाने से बढ़ा हुआ रक्तचाप नियंत्रित तथा कष्ट से होनेवाली श्वसनक्रिया सामान्य हो जाती है, इसके अतिरिक्त स्मरणशक्ति व नेत्रज्योति में भी वृद्धि होती है।

निष्ठावान बनो !

- पूज्य बापूजी

यदि निष्ठा दृढ़ हो तो कठिन-से-कठिन कार्य भी पूर्ण हो सकता है । इसी जन्म में परमात्मा के समग्र स्वरूप को पाने का दृढ़ संकल्प हो, अनन्य भाव हो तो वह भी पूर्ण हो जाता है । मनुष्य के पास दुःख मिटाने के लिए, शांति पाने के लिए, सफलता पाने के लिए उसकी निष्ठा पर्याप्त है ।

महाराष्ट्र में कराड़ है । वहाँ एक भगवद्भक्त सखूबाई हो गयी । सखूबाई बड़ी सुशील, नम्र और सरलहृदया थी पर उसके सास-ससुर और पति उतने ही कर्कश व कठोर थे । वे सखू को खूब सताते थे ।

चाहे कैसी भी परिस्थिति हो लेकिन अपना दृढ़ संकल्प उन परिस्थितियों को बदल देता है । दुनिया के लोग चाहे आपके साथ कैसा ही व्यवहार करें लेकिन आप अपने साथ जुल्म नहीं करते तो उनका जुल्म आपको मिटा नहीं सकता । अपनी निष्ठा और विश्वास दृढ़ होना चाहिए । पत्नी की निष्ठा है कि 'मैं पतिपरायण रहूँगी' लेकिन साड़ी फट जाय और पड़ोसी के यहाँ साड़ी की भीख माँगने जाय तो यह पति में निष्ठा नहीं है । एक भक्त है और उससे कीड़ी मर गयी तो भगवान अच्युत का सुमिरन कर ले । यह उसकी निष्ठा है कि चलो, कीड़ी के मरने का पाप नष्ट हो गया । लेकिन भक्त कर्मकांडी बने और सोचे कि 'गंगा नहायेंगे, उपवास करेंगे तब मेरा पाप मिटेगा' तो यह उसकी विचलित निष्ठा है । योगी है, अगर उससे कीड़ी मर गयी तो उसने प्राणायाम कर लिया; सोचा, 'कीड़ी का शरीर बदला, आत्मा तो अमर है और मैंने जानबूझकर नहीं मारा' तो ठीक है; लेकिन योगी गंगा नहाने जाय अथवा उपवास करने लगे तो उसकी योगनिष्ठा उसको तारेगी नहीं । तत्त्वज्ञानी है, चलते-चलते कीड़ी मर गयी तो वह भी प्राणायाम करने लग जाय और आत्मा का अनुसंधान करने लग जाय तो उसकी निष्ठा से वह गिरा है । तत्त्ववेत्ता है तो तत्त्ववेत्ता की निष्ठा है कि 'तत्त्व तो ज्यों-का-त्यों है, कीड़ी की आकृति बनती-बिगड़ती है । ॐ ॐ...' पूरा हो गया ।

अपनी निष्ठा अपना कल्याण करने के लिए पर्याप्त है । सखूबाई की निष्ठा देखो । कितना-कितना जुल्म होता था लेकिन वह अपनी निष्ठा से विचलित नहीं होती थी । 'भगवान मेरे हैं और मेरी उन्नति के लिए वे यह लीला रच रहे हैं । सुख-दुःख सब भगवान की देन है ।'- ऐसी सखूबाई की निष्ठा थी ।

प्रह्लाद की निष्ठा देखो । पिता कितना कष्ट देता है पर प्रह्लाद की निष्ठा है कि 'मेरा हरि सर्वत्र है, वह मेरा रक्षक है' तो अग्नि ने प्रह्लाद को नहीं जलाया लेकिन जिसे वरदान था वह होलिका जल मरी ।

'मेरी गाँधीजी के प्रति निष्ठा है । मैं गाँधीजी का अनुसरण करता हूँ । उन्हें अपना प्रेरणास्रोत मानता हूँ'- ऐसा बोलना अलग बात है। यह भाषणबाजी करके जनता को उल्लू बनाना अलग बात है लेकिन गाँधीजी के प्रति निष्ठा है तो गाँधीजी के आचरण जैसा अपने जीवन का कोई एक आचरण तो बताओ ! गाँधीजी कितने सत्यप्रिय थे ।

निष्ठा तो शबरी भीलन की थी । गुरुजी ने कह दिया : 'शबरी ! रामजी के पास तुझे नहीं जाना पड़ेगा, तू आश्रम की सेवा करना, रामजी

अपने-आप तेरे पास आयेंगे ।' शबरी जब गुरु के आश्रम में आयी थी तब सोलह साल की थी । अब वह अस्सी साल की बुढ़िया हो गयी, सब लोग उसको पागल बोलते, कुछ-का-कुछ बोलते लेकिन शबरी की निष्ठा ने रामजी को अपने द्वार पर ला दिया और जूठे बेर खिलाकर दिखा दिया । इसका नाम होता है निष्ठा !

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास ।

प्रह्लाद की निष्ठा से नृसिंह भगवान प्रकट हो गये । ध्रुव की निष्ठा से उसकी ५ साल की उम्र में भगवान नारायण प्रकट हो गये । समर्थ रामदासजी के भाई रामी रामदास को माँ ने कहा कि 'बेटा ! तू हनुमानजी की ओर एकटक देख और निष्ठा से जप कर तो हनुमानजी प्रकट हो जायेंगे ।' बेटे ने माँ के वचन में निष्ठा रखी और आठ साल की उम्र में हनुमानजी को प्रकट करके दिखा दिया । ऐसे ही शिवाजी महाराज की अपने गुरुजी में, अपने धर्म में, अपनी प्रजा के प्रति कैसी निष्ठा थी ! सुबह जब मैं घूमने जाता हूँ तो देखता हूँ कि गरीब लोग जिनके झोंपड़े का ठिकाना नहीं, कच्ची सड़क पर भारत की गरीब माताएँ अपने बच्चों को लेकर सोयी हैं तो मेरे दिल में बहुत पीड़ा होती है । देशवासियों का खून चूस-चूसकर चोर लोगों ने स्विस बैंक में अरबों-खरबों रुपये रखे हैं । अगर सरकार हिम्मत कर विदेश से वह पैसा लाकर भारत को कर्जमुक्त करे और इन गरीब-गुरबों को मकान बनाकर दे तो कितना अच्छा हो !

पंढरपुर प्रसिद्ध तीर्थ है । हर वर्ष लाखों नर-नारी कीर्तन करते हुए पंढरीनाथ श्रीविट्ठल भगवान के दर्शनार्थ जाते हैं । कुछ यात्री कराड़ से पंढरपुर के मेले में जा रहे थे । यात्रियों को जाते देख सखूबाई के मन में श्री पंढरीनाथ के दर्शन की इच्छा जाग उठी । उसने सोचा कि 'सास-ससुर आदि से तो आज्ञा मिल नहीं सकती ।' अतः घड़ा वहीं रखके यात्रियों के साथ चल दी । उसकी पड़ोसन, जो नदी पर पानी भरने आयी थी, उसने यह खबर उसकी सास को सुनायी तो सास ने अपने बेटे को भड़काकर भेजा । वह उसे मारते, घसीटते हुए घर ले आया और एक कोठरी में बंद कर दिया । तीनों ने पक्का कर लिया कि 'जब तक पंढरपुर का मेला होता है तब तक सखू को बाँधकर रखेंगे और कुछ भी खाने-पीने को नहीं देंगे ।' लेकिन सखूबाई यह नहीं कहती कि 'भगवान ! मैं तुम्हारी भक्ति करती हूँ और तुमने मेरे लिए क्या किया ?' निष्ठा नहीं तोड़ती । सखूबाई को बाँध दिया गया तो वह कहती है : 'मेरे विट्ठल ! अब मैं क्या करूँ ? हे दीनानाथ ! मैं न तुम्हारा पूजा-पाठ जानती हूँ, न भक्ति जानती हूँ; मैं तो इतना ही जानती हूँ कि अब तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं है । हे प्रभु ! मैं तो केवल आपकी हूँ ।'

प्रार्थना करते-करते शांत हो जाते हैं तो अंतर्यामी की लीला शुरू होती है । भगवान तो सर्वसमर्थ हैं । वे सखूबाई का रूप बनाकर वहाँ प्रकट हो गये और बोले : ''बाई ! मैं पंढरपुर जा रही हूँ । तू चल, तेरी सास ने मुझे भेजा है ।''

सखू ने कहा : ''जाना तो चाहती हूँ पर बँधी पड़ी हूँ ।''

भगवान उसे खोलते हुए बोले : ''तू शीघ्र पंढरपुर चली जा । मैं तेरी सास से मिलकर आती हूँ ।''

इस प्रकार भगवान ने सखू को पंढरपुर पहुँचा दिया और आप सखू का रूप धरके उस कोठरी में स्वयं बँध गये और ज्यों-का-त्यों ताला लगा लिया । सखूबाई तो पंढरपुर पहुँची और परमात्मा सखूबाई के रूप में बँधे हैं, कैसी निष्ठा है !

जहाँ सखू वेशधारी भगवान बँधे थे वहाँ आकर सखू के सास-ससुर और पति दिन में दो-चार बार गालियाँ सुनाते लेकिन भगवान पर दृष्टि पड़ते-पड़ते उनके अंतःकरण में सत्त्वगुण जाग

उठा। वे तीनों पश्चात्ताप करने लगे। उसके बंधन काटकर क्षमा माँगने लगे। जुल्मी जुल्म करता है लेकिन निष्ठावान की कृपा से जुल्मी का हृदय बदलता है।

भगवान वे सभी गृहकार्य करने लगे जो सखू करती थी - भोजन बनाना, भोग लगाना, सास-ससुर को खिलाना... उन्हें तो आनंद आने लगा। तीनों विचार करने लगे कि 'हमने गलती की जो सखू को इतना कष्ट दिया।'

इधर मेला पूरा हुआ। सखू ने सोचा, 'अब जाऊँगी तो घरवाले क्या पता मेरा क्या हाल करेंगे।' उसे पता ही नहीं था कि उसके लिए कोई बँधा है। उसने सोचा, 'उस नरक से तो यहीं मर जाना अच्छा है।' उसने प्रतिज्ञा की कि 'अब मैं इस देह से घर नहीं जाऊँगी।' सखू भगवान के ध्यान में मग्न हो गयी और वहीं कुछ समय बाद प्रभु के ध्यान-ध्यान में सखू के प्राण निकल गये। दैवयोग से कराड़ के निकट के किवल ग्राम के एक ब्राह्मण ने उसे पहचान लिया और अपने साथियों को बुलाकर वहीं उसकी अंत्येष्टि कर दी।

इधर जब भगवान को सखूवेश में बहुत दिन हो गये तो रुक्मिणीजी ने देखा कि 'सखू तो मर गयी और मेरे स्वामी उसकी जगह बहू बन बैठे हैं। अब मैं क्या करूँ ?' उन्होंने श्मशान में जाकर सखू की हड्डियाँ इकट्ठी कीं और अपनी योगशक्ति से उनमें प्राणों का संचार कर सखूबाई को खड़ा कर दिया। जो आद्यशक्ति समस्त ब्रह्माण्ड की रचना करनेवाली हैं, उनके लिए सखू को जीवित करना कोई बड़ी बात नहीं थी।

रुक्मिणीजी ने कहा : ''सखू ! तुमने कहा था कि 'इस शरीर से नहीं जाऊँगी' तो वह शरीर तो जल गया। अब मैंने तेरा नया शरीर बनाया है, तू अपने घर जा।'' अपरिचित देवी की बात सुनकर सखू कराड़ पहुँच गयी।

इधर भगवान घड़ा लेकर नदीतट पर पानी भरने आये और सखू को देखकर बोले : ''बहन ! तू बहुत दिनों के बाद आयी है। ले, अब तू अपना घड़ा सँभाल, मैं जाती हूँ।'' देखते-ही-देखते भगवान अंतर्धान हो गये।

तुम क्या समझते हो निष्ठा की लीला ! इस कथा-वार्ता को पढ़-सुनकर जो लोग अपनी निष्ठा दृढ़ करेंगे वे भक्ति में सफल होंगे, ज्ञानी ज्ञान में सफल होंगे, सेवक सेवा में सफल होंगे, कर्मी कर्म में सफल होंगे, निष्ठा फलदायी होगी। इस कथा को वरदान मिल गया। अपनी-अपनी निष्ठा व्यक्ति को कल्याण के आखिरी शिखर तक पहुँचा देती है।

इस आत्मा में अनेक रूप धारण करने की शक्ति है। सपने में तो ऐसा होता ही है, जाग्रत में भी निष्ठा के बल से होता है। तुम्हारे यही आत्मभगवान सखू भी बन सकते हैं, नरसिंह भी बन सकते हैं, कृष्ण-कन्हैया और राम बनकर भी प्रकट हो सकते हैं। हे मानव ! तुम्हारे आत्मा-परमात्मा में कितना सामर्थ्य है तुम्हें पता नहीं। तुम्हारा सच्चिदानंद परमात्मा सत्ता, सामर्थ्य, सौंदर्य और आनंद से भरा है। उसकी प्रीति, स्मृति और उसमें विश्रांति पाकर निरहंकार, निर्मम, निर्दुःख हो जाओ। ❑

अमृतकण

✲ कुसंग केवल मनुष्यों का ही नहीं होता, शरीर से होनेवाले काम, इन्द्रियों के सारे विषय, स्थान, साहित्य, व्यापार, नौकरी, अर्थ-सम्पत्ति, खानपान, वेशभूषा आदि सभी कुसंग बन सकते हैं।

✲ भगवद्दर्शन की इतनी चिंता न करें, भगवद्-चिंतन की अधिक चिंता करें। किसी भी प्रकार परमात्मा की शरण में जाने से माया छूट सकती है। जब तक अहं और आवश्यकता रहती है तब तक परमात्मा में तल्लीन नहीं हो पाते।

सर्वज्ञ होते हुए भी अनजान !

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

'विष्णुसहस्रनाम' के ६४वें श्लोक में भगवान का एक नाम दिया गया है 'अविज्ञाता' अर्थात् अनजान । भगवान सबके आत्मा बनकर बैठे हैं तो सब कुछ जानते हैं लेकिन बड़े अनजान भी हैं । कैसे ? इसकी व्याख्या करते हुए भक्तजन बोलते हैं कि 'भक्तों के दोष देखने में भगवान अनजान हैं ।'

भक्तों ने जो व्याख्या की है हम उसका विरोध नहीं करते, उनको धन्यवाद देते हैं लेकिन मेरी व्याख्या भी उसमें जोड़ दो कि 'भक्त का, मनुष्य का, प्राणियों का अहित करने में भगवान अनजान हैं । जैसे माँ बच्चे का अहित नहीं कर सकती, ऐसे ही भगवान हमारा अहित नहीं कर सकते ।'

भक्त के दोष देखने में भगवान अनजान रहेंगे तो उसके दोष निकलेंगे कैसे ? वह निर्दोष कैसे बनेगा ? किसीका अमंगल करने का ज्ञान भगवान में नहीं है, दण्ड देंगे तो भी मंगल के लिए । जैसे - माँ चपत लगायेगी तो भी मंगल के लिए और मिठाई खिलायेगी तो भी मंगल के लिए ।

भगवान को उलाहना दिया करो, उनसे छेड़खानी कर लिया करो कि 'महाराज ! हम चाहे अज्ञानी हैं, अनजान हैं लेकिन आप भी अनजान हैं । हमारा अहित करने में आप अनजान हैं । है क्या ताकत आपमें हमारा अहित करने की, बोलो ?' ऐसे आप भगवान को भी चुनौती (चैलेंज) दिया करो । भगवान वहाँ हार जायेंगे । जैसे - एक बच्चे ने माँ को चुनौती दी कि ''माँ ! तू हमारा अमंगल नहीं कर सकती । हिम्मत है तो करके दिखा ।'' तो माँ बोली : ''इधर आ दिखाती हूँ !'' बच्चा बोला : ''कुछ भी हो माँ ! तू अमंगल नहीं कर सकती ।'' माँ बोली : ''अरे नटखट ! इधर आ तेरे को दिखाती हूँ ।'' ऐसा करके कान पकड़कर धीरे-से तमाचा लगाया । बोली : ''देख, मैंने तेरे को ठीक कर दिया न !'' बच्चा बोला : ''हाँ, अहंकार से हम बेठीक हो गये थे, आपने तमाचा मारकर ठीक ही तो किया माँ ! अमंगल तो नहीं किया ! मैया रे मैया... प्रभु रे प्रभु... हा हा हा... !''

ऐसे ही ठाकुरजी जो भी करेंगे हमारे हित के लिए ही करेंगे । भगवान किसीका अमंगल नहीं कर सकते । जैसे - हम हमारे शरीर के किसी अंग का अमंगल नहीं करेंगे, चाहे उसको कटवा दें फिर भी अमंगल नहीं करेंगे, भलाई के लिए थोड़ा हिस्सा कटवायेंगे । भगवान कहते हैं :

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।

'मेरा भक्त मुझको सम्पूर्ण भूत-प्राणियों का सुहृद अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्व से जानकर शांति को प्राप्त होता है ।'

(गीता : ५.२९)

एक बार नारायण बापू (पूज्य बापूजी के मित्र संत) किसी बात पर आ गये तो मैं खूब हँसा । उन्होंने थोड़ा दम मारा तो मैं और हँसा । बोले : ''क्यों हँसते हो ?'' मैं बोला : ''तुम्हारी ताकत नहीं है... !'' महाराज पहुँचे हुए थे, अदृश्य होने की सिद्धियाँ थीं उनके पास और जो भी संकल्प करते थे सफल होता था, यह भी मैं जानता था । नल गुफा में हमारे साथ रहते थे । सिद्धपुरुष थे लेकिन उनको मैंने दम मार दिया । मैंने कहा : ''आपकी ताकत नहीं है... !'' **(शेष पृष्ठ १३ पर)**

अपना-पराया

- पूज्य बापूजी

साधक को जब मंत्र मिलता है न, तो वह मौन हो जाता है, जपते-जपते चुप हो जाता है। कैकेयी को भी मंत्र मिला था और वह चुप हो गयी थी, उसको मौन रुच रहा था। उसको मंत्र किसने दिया था ? वसिष्ठ महाराज ने दिया था कि अन्य किन्हीं ब्रह्मज्ञानी महापुरुष ने दिया था ? नहीं। राजसी और तामसी मति से भरपूर मंथरा ने दिया था। मंत्र तो क्या कुमंत्र दिया था। रामराज्य की बात सुनकर मंथरा ने कैकेयी से मुलाकात की। कैकेयी बड़ी खुश थी कि 'मेरा ज्येष्ठ पुत्र राजा हो रहा है।' कैकेयी और रामजी की आपस में खूब बनती थी।

कैकेयी ने मंथरा को कहा कि ''ले यह हार, कल मेरे सपूत श्रीराम का राज्याभिषेक होगा।''

''क्या कहा, तेरा सपूत... ?''

''हाँ, राम मेरा सपूत है न !''

''यह तो ठीक है लेकिन अपना अपना होता है, पराया पराया होता है।''

मंथरा ने कैकेयी को कुमंत्र दे दिया। जो राग-द्वेष पैदा कर दे वह 'मंत्र' नहीं 'कुमंत्र' है और जो राग-द्वेष मिटाकर तत्त्वज्ञान की तरफ ले जाय वह 'सुमंत्र' है। मंथरा ने कैकेयी को ऐसा कुमंत्र दिया कि धीरे-धीरे उसकी बुद्धि बदली और उसने महाराज दशरथ को इस बात के लिए मजबूर किया कि 'राम तो जाय वनवास और भरत राजसिंहासन पर बैठे।' यह हुआ उस कुमंत्र से और सुमित्रा ने अपने बेटे लक्ष्मण को मंत्र दिया कि 'तुम रामजी की सेवा में जाओ और रामजी के नाते सबसे व्यवहार करना। जैसे पतिव्रता स्त्री पति के नाते सास, ससुर, देवर, जेठ तथा पति के मेहमानों की भी सेवा कर देती है, ऐसे ही तुम भी रामजी के नाते सबसे व्यवहार करना और अनेक में एक देखना, अपने-पराये का भेद मत करना।' उसने यह सात्त्विक मंत्र दिया तथा मंथरा ने कुमंत्र दिया : 'यह अपना, यह पराया...।'

वास्तव में देखें तो अपना कौन है ? अपनी देह भी अपने कहने में नहीं चलती, अपना मन भी अपने कहने में नहीं चलता, अपना बेटा भी अपने कहने में नहीं चलता, आजकल अपने दोस्त भी अपनों से धोखा कर लेते हैं। अपनेवाले कब, कितना काम आयेंगे कोई पता नहीं। और कई बार अपने ही पराये बन जाते हैं और पराये अपने बन जाते हैं। तत्त्वज्ञान तो यह है कि अपना तो एक आत्मा-परमात्मा है जो मौत के बाद भी हमारा साथ नहीं छोड़ता। वही अपना है बाकी सब सपना है। ❐

(पृष्ठ १२ 'सर्वज्ञ होते हुए भी अनजान !' का शेष)

तो मेरी ओर देखने लगे। वे जानते थे कि मैं उनकी ताकत को जानता हूँ। मैंने कहा : ''आप अहित कर ही नहीं सकते।'' फिर वे हँसने लगे। ऐसे आप भी कभी-कभी भगवान को चुनौती दिया करो कि 'महाराज ! आप हमारा अमंगल करने में अनजान हैं, आपकी ताकत नहीं कि हमारा बुरा कर सको।

साधु ते होइ न कारज हानी।

(श्री रामचरित. सुं.कां. : ५.२)

आपके साधु भी हमारे कार्य की हानि नहीं कर सकते तो आप क्या कर सकते हो ? आप तो संतों के संत हैं। प्रभु ! आप हमारा अहित कैसे कर सकते हो ?' ❐

वास्तविक भगवान

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

अपने शास्त्र, इष्टमंत्र और गुरु-परम्परा - इन तीन चीजों से पूर्णता प्राप्त होती है। मनमाना कुछ किया और सफलता मिली तो व्यक्ति अहंकार में नष्ट हो जायेगा और विफलता मिली तो विषाद में जा गिरेगा। साधना ठीक है कि नहीं यह कैसे पता चलेगा ? यह आत्मानुभव है या कोई और अनुभव है - यह किसीसे तो पूछना पड़ेगा ? मुझे देवी दिखती हैं, देवता दिखते हैं, भगवान दिखते हैं... अरे, तुम्हारी भावना के भगवान कब तुम्हारे साथ रहें और कब झगड़ा हो जाय कोई पता नहीं। कब तुम्हारी भावना के भगवान से तुमको अलग होना पड़े कोई पता नहीं। जय-विजय वैकुण्ठ से भी गिरे थे।

एक व्यक्ति खूब पढ़े थे - बी.ए.बी.एड. किया, एम.ए.एम.एड. किया, पीएच.डी. की, डी.लिट. किया। देखा कि नौकरी कर-करके जिंदगी पूरी हो रही है तो साधु बन गये। वृंदावन में आकर बाँकेबिहारी की भक्ति करते थे। नंदनंदन यशोदानंदन श्रीकृष्ण को बालक रूप में मानते थे। किसी गरीब का बालक मिल गया, बड़ा प्यारा लग रहा था। उसी बालक की कृष्ण के रूप में उपासना करने लगे। यशोदा माँ जैसे कृष्ण को उठातीं, वैसे वे उस बालक को उठाते, नहलाते-धुलाते, खिलाते-पिलाते। साधु उस बालक में कृष्णबुद्धि करके सारा दिन उसकी पूजा में बिताते थे। एक-दो-तीन साल के होते-होते उनके कृष्ण-कन्हैया सोलह साल के हो गये। वे ठाकुरजी युवराज श्रीकृष्ण हो गये तब भी उनको बड़े लाड़-प्यार से पालते, पीताम्बर पहनाते, बंसी देते, आरती करते।

एक दिन उनको सूझा कि मेरे प्रभुजी को प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी के पास ले जाऊँ। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी बड़े खिलाड़ी थे। पंडित नेहरु के साथ भी खेले कि 'चलो, आ जाओ चुनाव में, हम भी तुम्हारे सामने खड़े रहेंगे, फार्म भरेंगे, क्या हो जायेगा ? तुम्हारे से थोड़े मत (वोट) कम मिलेंगे लेकिन हमको भी दुनिया जानती है।' नेहरुजी के सामने खड़े रहकर उन्होंने पचपन हजार मत ले लिये। तो ऐसे विनोदी थे, खिलाड़ी थे। साधु अपने ठाकुरजी को उनके पास ले गये। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने समझाया कि भावना के भगवान और वास्तविक भगवान में कुछ अंतर भी समझो। इस सोलह साल के छोरे को तुम भगवान मानते हो लेकिन सचमुच में भगवान श्रीकृष्ण थे तब भी अर्जुन का दुःख नहीं मिटा था। जब भगवान श्रीकृष्ण ने भगवत्-तत्त्व का, सच्चिदानंद प्रभु-तत्त्व का ज्ञान दिया और अर्जुन ने स्वीकार किया तभी दुःख मिटा। साधु बात मानने को तैयार नहीं हुआ, बोला : 'मेरे ये बाल-गोपाल अभी युवराज कृष्ण हैं, मेरे मुक्तिदाता हैं।'

अब प्रभुदत्त ब्रह्मचारी खिलाड़ी ठहरे। उन्होंने सोलह वर्ष के कृष्ण-कन्हैया को थोड़ा दूर जंगल में घूमने के बहाने ले जाकर प्रश्नोत्तर करते-करते, बातचीत करते-करते रँग दिया। किसी गरीब का लड़का था और वह ठाकुरजी होकर मजा ले रहा था। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के संग से भगवान का व्यवहार जरा बदला हुआ मिला तो वह साधु उस लड़के को बोला : ''ऐसा कैसे हो गया रे तू ?''

लड़का : ''अभी भगवान मानते थे और अभी 'तू' बोल रहे हो, शर्म नहीं आती ? मैं तो कृष्ण हूँ।''

साधु : ''अरे, तू काहे का कृष्ण है ?''

अब भक्त और भगवान में जरा तू-तू, मैं-मैं हो गयी। उस साधु ने कहा : ''अच्छा ठाकुरजी ! मैं तुझे दिखाता हूँ।''

वह उसको बातों में लगाके जंगल में ले गया और जमकर पिटाई की। आज तक भगवान ने मक्खन-मिश्री खायी, दुपट्टे पहने और मजा लिया था। जब धाऽड़-धाऽड़ करके पिटाई हुई तो वे भगवान कैसे भी करके जान छुड़ाकर भागे और रेलवे स्टेशन पर जा पहुँचे।

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी को पता चला। वे वहाँ पहुँच गये और उस लड़के से बोले : ''तुम्हारी उनकी नहीं बनती है तो मेरे यहाँ रहो। अब जाके झोंपड़ी में रहोगे और खेत-खली में तपोगे, काले बन जाओगे। ठाकुरजी जब थे तब थे, अब तुम ब्रह्मचारी होकर मेरे पास ही रह लो। भगवान को थोड़ा शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए। सर्वज्ञ हरि ! अपने सर्वज्ञ स्वभाव को भी जानो। 'भागवत' में आता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने भी युधिष्ठिर महाराज के यज्ञ में साधुओं का सत्कार किया था, उनके चरण धोये थे, उनकी जूठी पत्तलें उठायी थीं।''

सोलह वर्ष के भगवान को यह बात जँच गयी। वह लड़का प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी के यहाँ जैसे आश्रम में साधक रहते हैं ऐसे रहा।

यह प्राचीनकाल की कहानी नहीं है। इस युग की, नेहरुजी के जमाने की घटित घटना है। भगत होना अलग बात है, भावना अलग बात है लेकिन सत्य अलग बात है। वे कोई बुरे हैं ऐसी बात नहीं लेकिन वहीं-के-वहीं भावना के जगत में घूम रहे हैं। नामदेवजी भगवान के दर्शन करते थे, तब भी भगवान बोले : 'विसोबा खेचर के पास जाओ।' सतीजी को शिवजी बोलते हैं कि वामदेव गुरुजी से दीक्षा लो और काली ने अपने पुजारी गदाधर को कहा कि तुम गुरु तोतापुरीजी से दीक्षा ले लो और गुरु तोतापुरीजी ने गदाधर पुजारी को रामकृष्ण परमहंस पद पर पहुँचाया। हम बचपन में शिवजी की उपासना करते थे और वही करते रहते तो हमें बहुत-बहुत तो शिवजी के जाग्रत में दर्शन हो जाते और शिवजी आकर वरदान, आशीर्वाद देकर अंतर्धान हो जाते पर मैं गुरुजी के चरणों में गया, डटा रहा तो मेरा उज्ज्वल अनुभव है। मेरा रब अब मेरे से दूर नहीं। अब मेरा प्रभु वरदान देकर अंतर्धान होनेवाला नहीं, मेरे से बिछड़नेवाला नहीं, दूर नहीं, दुर्लभ नहीं।

ईशकृपा बिन गुरु नहीं, गुरु बिना नहीं ज्ञान।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं, गावहिं वेद पुरान॥ ❑

एक तो कर्तव्य-पालन में अपनी निष्ठा, दूसरा, वासुदेव सर्वत्र है और तीसरा, यह आत्मा ब्रह्म है ऐसा मानने से हर काम में आप सफल हो जायेंगे और कभी थोड़ा विफल भी हो जायेंगे तो विषाद नहीं होगा। - पूज्य बापूजी

*

जिन संतों के हृदय में सबकी भलाई की भावना है, जिनका सबके ऊपर प्रेम है ऐसे संतों को सताने के लिए मूढ़ लोग तैयार हो जाते हैं। पेड़ की छाया में बैठकर अपनी गर्मी मिटाने की अपेक्षा उस पेड़ की जड़ों को काटने लग जायें तो सोचो यह कैसी मूर्खताभरी बात है। पेड़ की छाया का लाभ ले ले न ! अपनी तपन मिटा... पर उसकी जड़ें ही काटने की बात करे तो उसे मूर्ख नहीं तो और क्या कहा जाय !

दुःखी न होना तुम्हारे हाथ की बात !

- पूज्य बापूजी

तुम निंदनीय काम न करो फिर भी अगर निंदा हो जाती है तो घबराने की क्या जरूरत है ? तुम अच्छे काम करो, प्रशंसा होती है तो जिसने करवाया उसको दे दो । बुरे काम हो गये तो प्रायश्चित्त करके रुको लेकिन जरा-जरा-सी बात में थरथराओ मत । संसार है, कभी दुःख आयेगा, कभी सुख आयेगा, मान आयेगा, अपमान आयेगा, यश आयेगा, अपयश आयेगा । कभी बेटा कहना नहीं मानेगा, कभी पत्नी कहना नहीं मानेगी, कभी पति कहना मानेगा- कभी नहीं भी मानेगा । कभी पति की चलेगी, कभी पत्नी की चलेगी, कभी बेटे की चलेगी, कभी पड़ोसी की होगी, कभी उस पार्टी की होगी, कभी इसकी होगी - इसीका नाम तो दुनिया है ।

खून पसीना बहाता जा,
तान के चादर सोता जा ।
यह नाव तो हिलती जायेगी,
तू हँसता जा या रोता जा ॥

ज्ञानियों के लिए सारा संसार तमाशा है । 'लोग अन्याय करें तो क्या बड़ी बात है, मैं अपने-आपसे तो अन्याय नहीं करता हूँ ?'- ये बातें तुमको सत्संग में मिलेंगी । चाहे तुम संत कबीरजी न हो पाओ, तब भी कुछ अंश में दुःख से बच पाओगे । 'अरे, अल्लाह, भगवान साक्षी हैं । उसके मुँह में कीड़े पड़ें । मैंने ऐसा नहीं किया, वह झूठा आरोप लगा रहा है... ।' अरे, कबीरजी पर भी कलंक लगा तो तेरे पर जरा लग गया तो क्या परवाह है ! नानकदेवजी पर लगा तो तेरे पर किसीने कुछ धब्बा लगा दिया तो चिंता मत कर, वह अंतर्यामी तो देखता है न ! हम अचल, हमारा चित्त अचल !

समता के साम्राज्य पर पहुँचे हुए नानकजी, कबीरजी, तुकारामजी महाराज, नरसिंह मेहता जैसे संतों की लोग जब निंदा करते हैं तो वे उद्विग्न नहीं होते, शांत रहते हैं पर आम लोग तो निंदा होने पर परेशान हो जाते हैं, सफाई देने लग जाते हैं कि 'भगवान की कसम हमने ऐसा नहीं किया, वैसा नहीं किया... ।'

कोई चाहे कैसा भी व्यवहार करे, दुःखी होना-न होना तुम्हारे हाथ की बात है, आसक्त होना-न होना तुम्हारे हाथ की बात है । तुमने क्या किया ? जो अपने अधिकार की चीज है वह दूसरों को दे दी, बड़े दाता बन गये ! बाहर की चीजें नहीं दीं । अपने हृदय को कैसे रखना यह तुम्हारे अधिकार की बात है लेकिन यह अधिकार तुमने दूसरों को दे दिया : 'फलाना आदमी ऐसा करे तो हमको सुख मिले, कोई निंदा न करे तो हम सुखी रहें । यह ऐसा हो जाय, वह वैसा हो जाय तो हम सुखी हो जायें... ।' तुमने अपने हृदय को जर्मन खिलौना बना दिया, कोई जैसे चाबी घुमाये ऐसे घूमना शुरू कर देते हो । लोग वाहवाही कर सकते हैं लेकिन अहंकार करना-न करना तुम्हारे हाथ की बात है । लोग निंदा कर सकते हैं लेकिन गुस्सा होना, भयभीत होना, चिढ़ना-न चिढ़ना तुम्हारे हाथ की बात है । मान लो, तुम्हारी निंदा किसी गलत कारण से हो रही है और तुम उसमें बिल्कुल शामिल नहीं हो तो लाखों-लाखों लोगों को समझाना तुम्हारे हाथ में नहीं है । पूरी दुनिया को चमड़े से ढकना तुम्हारे बस की बात नहीं है, अपने पैरों में जूते पहनकर काँटों से सुरक्षा कर लेना आसान है । ऐसे ही तुम महापुरुषों के जीवन से सीख लेकर समता में रहो । अपने से निंदनीय काम न हों, सावधान रहो, फिर भी निंदा होती है तो भगवान को धन्यवाद दो कि 'वाह प्रभु ! तेरी बड़ी कृपा है ।' ❑

दुःखी न होना तुम्हारे हाथ की बात !

- पूज्य बापूजी

तुम निंदनीय काम न करो फिर भी अगर निंदा हो जाती है तो घबराने की क्या जरूरत है ? तुम अच्छे काम करो, प्रशंसा होती है तो जिसने करवाया उसको दे दो । बुरे काम हो गये तो प्रायश्चित्त करके रुको लेकिन जरा-जरा-सी बात में थरथराओ मत । संसार है, कभी दुःख आयेगा, कभी सुख आयेगा, मान आयेगा, अपमान आयेगा, यश आयेगा, अपयश आयेगा । कभी बेटा कहना नहीं मानेगा, कभी पत्नी कहना नहीं मानेगी, कभी पति कहना मानेगा- कभी नहीं भी मानेगा। कभी पति की चलेगी, कभी पत्नी की चलेगी, कभी बेटे की चलेगी, कभी पड़ोसी की होगी, कभी उस पार्टी की होगी, कभी इसकी होगी - इसीका नाम तो दुनिया है ।

खून पसीना बहाता जा,
तान के चादर सोता जा ।
यह नाव तो हिलती जायेगी,
तू हँसता जा या रोता जा ॥

ज्ञानियों के लिए सारा संसार तमाशा है । 'लोग अन्याय करें तो क्या बड़ी बात है, मैं अपने-आपसे तो अन्याय नहीं करता हूँ ?'- ये बातें तुमको सत्संग में मिलेंगी । चाहे तुम संत कबीरजी न हो पाओ, तब भी कुछ अंश में दुःख से बच पाओगे । 'अरे, अल्लाह, भगवान साक्षी हैं । उसके मुँह में कीड़े पड़ें । मैंने ऐसा नहीं किया, वह झूठा आरोप लगा रहा है... ।' अरे, कबीरजी पर भी कलंक लगा तो तेरे पर जरा लग गया तो क्या परवाह है ! नानकदेवजी पर लगा तो तेरे पर किसीने कुछ धब्बा लगा दिया तो चिंता मत कर, वह अंतर्यामी तो देखता है न ! हम अचल, हमारा चित्त अचल !

समता के साम्राज्य पर पहुँचे हुए नानकजी, कबीरजी, तुकारामजी महाराज, नरसिंह मेहता जैसे संतों की लोग जब निंदा करते हैं तो वे उद्विग्न नहीं होते, शांत रहते हैं पर आम लोग तो निंदा होने पर परेशान हो जाते हैं, सफाई देने लग जाते हैं कि 'भगवान की कसम हमने ऐसा नहीं किया, वैसा नहीं किया... ।'

कोई चाहे कैसा भी व्यवहार करे, दुःखी होना-न होना तुम्हारे हाथ की बात है, आसक्त होना-न होना तुम्हारे हाथ की बात है । तुमने क्या किया ? जो अपने अधिकार की चीज है वह दूसरों को दे दी, बड़े दाता बन गये ! बाहर की चीजें नहीं दीं । अपने हृदय को कैसे रखना यह तुम्हारे अधिकार की बात है लेकिन यह अधिकार तुमने दूसरों को दे दिया : 'फलाना आदमी ऐसा करे तो हमको सुख मिले, कोई निंदा न करे तो हम सुखी रहें । यह ऐसा हो जाय, वह वैसा हो जाय तो हम सुखी हो जायें... ।' तुमने अपने हृदय को जर्मन खिलौना बना दिया, कोई जैसे चाबी घुमाये ऐसे घूमना शुरू कर देते हो । लोग वाहवाही कर सकते हैं लेकिन अहंकार करना-न करना तुम्हारे हाथ की बात है । लोग निंदा कर सकते हैं लेकिन गुस्सा होना, भयभीत होना, चिढ़ना-न चिढ़ना तुम्हारे हाथ की बात है । मान लो, तुम्हारी निंदा किसी गलत कारण से हो रही है और तुम उसमें बिल्कुल शामिल नहीं हो तो लाखों-लाखों लोगों को समझाना तुम्हारे हाथ में नहीं है । पूरी दुनिया को चमड़े से ढकना तुम्हारे बस की बात नहीं है, अपने पैरों में जूते पहनकर काँटों से सुरक्षा कर लेना आसान है । ऐसे ही तुम महापुरुषों के जीवन से सीख लेकर समता में रहो । अपने से निंदनीय काम न हों, सावधान रहो, फिर भी निंदा होती है तो भगवान को धन्यवाद दो कि 'वाह प्रभु ! तेरी बड़ी कृपा है ।' ❑

सच्चे तीर्थ

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

भगवान बोलते हैं : **येषां त्वन्तगतं पापं...** जिनके पापों का अंत होता है, **जनानां पुण्यकर्मणाम् ।** जिनके पुण्य जोर मारते हैं, **ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः...** वे द्वन्द्व और मोह से मुक्त होकर **भजन्ते मां दृढव्रताः ।** सत्संग में, साधना में, ईश्वरप्राप्ति में लगते हैं ।

बाकी के जो तुच्छ लोग हैं उनके लिए भगवान ने 'गीता' में कहा - **जन्तवः** । जैसे जीव-जंतु खाते-पीते, बच्चे करते और फिर मर जाते हैं, उनको पता ही नहीं कि इतना मूल्यवान जीवन कैसे बिताना चाहिए, ऐसे लोगों को भगवान ने **जन्तवः** कहकर उपेक्षा करके एक प्रकार की गाली दी है। **तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।** वे जंतु हैं, मोहित हो रहे हैं। 'भागवत' में आया है : **मन्दाः सुमन्दमतयः...** ऐसे लोग मंदमति के हैं, **मन्दभाग्याः** भाग्य भी उनका मंद है, **उपद्रुताः** इसकी निंदा, उसकी चुगली करने के उपद्रवी स्वभाव के हैं। कलियुग के दोषों से भरे हुए मनुष्य की पहचान कराते हैं भगवान और सत्शास्त्र ।

मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ।

वे मंदमति हैं, मंदभागी हैं और उपद्रवी हैं। खुद तो उपद्रवी हैं और दूसरों को भी ऐसे-वैसे साजिश करके, अफवाह फैलाकर उपद्रवों की आग में झोंकते हैं ।

जब महापुरुष हयात होते हैं तो बोलते हैं : **उल्टा मार्ग दसेंदा नानक ।** नानकजी के विरुद्ध बगावत करते हैं। नानकजी जैसे महान संत को कारागार में डालनेवाले ऐसे अभागे लोग पीछे नहीं हटा करते। उसमें भी अपनेको बड़ा आदमी साबित करते हैं कि देखो, इनके गुरु बड़े कि मैं बड़ा हूँ। नानकजी को कारागार में डाल दिया बाबर ने, ऐसी बेकदरी की लोगों ने नानकजी की। तो ये मंदमति हैं। जिनकी मति मारी गयी है वे संतों की हयाती में संतों का फायदा नहीं ले पाते हैं अपितु संतों में दोषदर्शन करते हैं ।

हयात गुरु जब समाज में होते हैं तो लोग अवज्ञा करते हैं, उनके लिए कुछ-की-कुछ अफवाहें करते हैं, निंदा आदि करते हैं, जिससे हयात गुरु से लोग वंचित हो जाते हैं, कम फायदा उठा पाते हैं। भगवान के मंदिर में जाते हैं, मूर्ति के आगे माथा टेकते हैं तो मूर्ति न कुछ बोलती है, न टोकती है, न डाँटती है। अपनी तरफ से श्रद्धा होने से थोड़ा पुण्य होता है। इसलिए संत कबीरदासजी ने यह पर्दा उठाया समाज की आँखों से, बोले :

तीरथ नहाये एक फल... तीर्थ में नहाते हो तो एक फल होता है। **संत मिले फल चार -** धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष लेकिन उन संत में अगर श्रद्धा-भक्ति हो और वे तुम्हारे सद्गुरु हैं तो उनके साथ अपनत्व होगा। गुरु के साथ शिष्य का अपनत्व होता है तो गुरु का भी शिष्य के साथ अपनत्व होता है - जैसे माँ का बच्चों के साथ अपनत्व होता है तो माँ सार-सार बच्चे को पिला देती है। गाय का बछड़े के साथ अपनत्व होता है तो गाय सर्दी-गर्मी, आँधी-तूफान, धक्का-मुक्की खुद सहती है, दिन भर भटकती है लेकिन दूध बनता है तो बछड़े को तैयार माल (शेष पृष्ठ २० पर)

गौरव भक्ति

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

भगवान की भक्ति मुख्यतः दो तरह की होती है - गौरव भक्ति और संबंध भक्ति। वैसे भक्ति के कई अवांतर प्रकार हैं।

हम पृथ्वी पर चलते हैं, दौड़ते हैं, कितना बढ़िया दौड़ते हैं लेकिन पृथ्वी नहीं होती तो कहाँ दौड़ते ? और पृथ्वी क्या हमारी बनायी हुई है ? उस (ईश्वर) ने बनायी है। तो पृथ्वी उसकी है लेकिन दौड़ने की शक्ति क्या हमारी अपनी है ? यह उसीकी महिमा है।

पृथ्वी होने पर भी पैर नहीं देता तो हम कैसे दौड़ते ? और पैर होते हुए भी बल नहीं देता तो हम कैसे दौड़ते ? अन्न उसका, मन उसका और शरीर उसका ! दौड़ते हैं तो भी उसीका गौरव है। वाह ! प्रभु वाह ! यह तेरा गौरव है। बोलते हैं तो उसीका गौरव है, खाते हैं तो उसीका गौरव है और सोते हैं तो नींद क्या हमने बनायी ? तूने दी प्रभुजी ! माँ के शरीर में दूध तूने बनाया... जहाँ-तहाँ भगवान का गौरव याद आ जाय !

काली-कलूटी भैंस हरी-हरी घास खाये और दूध बनाये सफेद, क्या तेरा गौरव है ! कीड़ी में तेरी चेतना छोटी और हाथी में बड़ी दिखती है। महावत में अक्ल-होशियारी दिखती है। वाह प्रभु ! क्या तेरा गौरव है !

कीड़ी में तू नानो लागे, हाथी में तू मोटो ज्यों।
बन महावत ने माथे बैठो, हाँकनवालो तू को तू।
ऐसो खेल रच्यो मेरे दाता, जहाँ देखूँ वहाँ तू को तू॥

यह भगवान की गौरवमयी भक्ति है। गौरवमयी गाथा गाते-गाते, भगवान का गौरव गाते-गाते आपका हृदय भगवन्मय हो जायेगा, रसमय हो जायेगा।

देखो न, बेटा कितना प्यारा लगता है, आहा ! पर इस प्यारे को बनाया किसने और प्यारे को आँख द्वारा देखने की सत्ता कहाँ से आयी ? प्यारा लगता है तो इस अंतःकरण में चेतना कहाँ से आयी ? वाह प्रभु तेरा गौरव ! वाह प्यारे तेरी लीला !... देखा है फूल को पर याद करो भगवान का गौरव। बापू दिखें पर बापू में जो 'बापू' बैठा है, वाह मेरे प्यारे ! गुरु बनकर कैसा ज्ञान दे रहा है। वाह मेरे प्रभु ! शिष्य बनकर कितनी भीड़ की है, आहाहा ! वाह प्रभु तेरा गौरव ! इस प्रकार भगवदाकार वृत्ति हो जायेगी। किसीने अच्छी बात कही तो व्यक्ति के अंदर अच्छाई के सद्गुण की गहराई में तू है, तो भगवान की तरफ नजर जायेगी। जहाँ-तहाँ भगवान के गौरव को देखना यह है गौरव भक्ति। भगवान हमारे हैं और उनकी कैसी लीला है ! तो गौरव भक्ति से आपका अंतःकरण अहोभाव से भर जायेगा।

भगवान के प्रति दास्य भाव, सखा भाव, अमुक भाव रखना यह संबंध भक्ति है। संबंध भक्ति आपके हृदय को, चित्त को, वृत्ति को, आपकी मति को राग से, द्वेष से हटा देगी, चिंता से, भय से, खिन्नता से हटा देगी और भगवद्रस से भर देगी।

हरड़ लगे न फिटकरी और रंग चोखा आवे।

संसार का मजा लेने में तो कितनी मेहनत करनी पड़ती है। आलू लाओ, बेसन लाओ और आलू-बड़ा बनाओ... ऐसा करो, ऐसा करो फिर खाओ तब जीभ को रस आया। बोले : 'आहा !

आलू-बड़ा खाया !' पर थोड़ा ज्यादा खाया और पचा नहीं तो ? करते हैं : 'ओऽ... ओऽ... ।'

यह खाने का रस आया पर उसमें भी **रसो वै सः वैश्वानरो।** यह चैतन्य की चेतना न हो तो ? इतनी मजूरी की पर रस तो ज्ञानस्वरूप तेरा ही गौरव है मेरे प्यारे ! मेरे कन्हैया !

एक बार योगी गोरखनाथजी जंगल में से कहीं जा रहे थे । एक गड़रिये ने कहा : ''बाबा ! कहाँ जा रहे हैं ? धूप है, आओ जरा छाँव में बैठो ।''

उस गरीब गड़रिये ने प्रेम से रोटी खिलायी और बोला : ''तनिक यहाँ आराम करो बाबा !''

जब गोरखनाथजी आराम करके जाने लगे तो गड़रिया बोला : ''बाबा ! मेरा कुछ करो । मैं अनपढ़, मूर्ख हूँ । मेरी भक्ति कैसे बढ़ेगी, मुक्ति कैसे होगी ?''

''मुक्ति चाहिए क्या ?... भक्ति चाहिए ?''

''हाँ बाबा !''

''देखो, **संयम से शक्ति आती है, प्रीति से भक्ति आती है और ज्ञान से मुक्ति मिलती है ।** शक्ति, भक्ति और मुक्ति... अब तीनों में से एक को भी पकड़ लो तो बाकी की दो आ जायेंगी । चादर का कोई भी एक कोना पकड़ लो तो शेष तीनों अपने-आप हाथ में आ जायेंगे ।''

''बाबा ! मैं तो कालो अक्षर भैंस बराबर जाणूँ; न पढ़ो हूँ न पढ़ूँगो । क्या मेरी मुक्ति हो सकती है ?''

गोरखनाथजी ने कहा : ''हाँ, आराम से । तू ये बकरियाँ और भेड़ें चराता है न ! ये हरी-हरी, पीली-पीली घास खाती हैं और सफेद-सफेद दूध देती हैं न ?''

किसान बोला : ''हाँ ।''

''कहते रहना - वाह प्रभु ! तेरी लीला अपरंपार है । भेड़ों के ये प्यारे-प्यारे बच्चे, उनकी नन्ही-नन्ही आँखें, उनमें तू देखने की सत्ता देता है । कैसे तू घास में से बच्चे और दूध बना देता है ! वाह प्रभु तेरी महिमा !''

इस प्रकार गोरखनाथजी ने उसे गौरव भक्ति का उपदेश दे दिया । अरे बाबा ! उसको तो ऐसा रंग लगा कि हर समय 'वाह प्रभु तेरी महिमा !' जहाँ-तहाँ प्रभु की महिमा देखे । जलाशय में जाय तो मछलियाँ नाच रही, दौड़ रही हैं... सोचे, 'क्या महिमा है ! क्या तेरी लीला है ! वाह प्रभु तेरी लीला ! वाह प्रभु तेरी महिमा !' उस जमाने में पान-मसाला तो था नहीं और न प्रदूषण था । दूध और रोटी खाता, कूड़-कपट से दूर रहता । थोड़े ही दिनों में उसका अंतःकरण शुद्ध हो गया और शुद्ध अंतःकरण में सामनेवाले की मनोदशा का पता चलने लगता है । हर जीव में यह शक्ति छुपी है ।

एक राजा को सपना आया कि अपना खजाना भर ले । उसने मंत्री से पूछा तो मंत्री ने कहा : ''यह अल्लाह-ताला ने सपना नहीं दिया है, आपकी शैतानवृत्ति का काम है ।'' तो मंत्री पर गुस्सा करके राजा ने उसे राज्य से निकाल दिया । मंत्री भटकता-भटकता इसी गड़रिये के पास पहुँचा ।

गड़रिया बोला : ''राजा ने लात मारकर तुम्हें निकाल दिया है लेकिन उस राजा (ईश्वर) की दुनिया तो सभीके लिए है । राजा ने खजाना भरने की बात की थी और तुमने कहा था कि 'यह भगवान नहीं कहते या अल्लाह नहीं कहते, आपकी शैतानवृत्ति है' तो सच्ची बात उसको अच्छी नहीं लगी ।''

मंत्री बोला : ''पर तुम्हें कैसे पता चला ?''

''तुममें, हममें, सबमें जो है वह तो एक है । वाह प्रभु तेरी लीला !''

'गोरखनाथजी ने बता दी है गौरव भक्ति...'- ये शब्द उसके पास नहीं थे लेकिन भगवान के गौरव को बार-बार याद करने से उसका अपना अहं भगवान में विलीन हो गया था ।

मंत्री दंग रह गया और गौरव भक्ति से गौरवान्वित गड़रिये की सिद्धाई का आश्चर्यजनक

वृत्तांत भाव-भंगिमा सहित राजा को सविस्तार सुनाया। राजा बड़ा प्रभावित हुआ और उस गड़रिये से मिलने के लिए गया।

राजा को ज्यों-ज्यों उस संत, सज्जन गड़रिये का सत्संग और सान्निध्य मिलता गया, त्यों-त्यों उसको सहज में ईश्वरीय सुख, अल्लाही सुख की झलक मिलने लगी।

यह गौरव भक्ति का मार्ग भी एक सरल मार्ग है। तुम बनाते-खाते, लेते-देते भगवान के गौरव का बखान करो अथवा तो भगवान के साथ हमारा संबंध है यह पक्का कर लो, उसकी स्मृति बनाओ और उसमें शांत होओ। गौरव गाओ, शांत होओ। शरीर तो मर जायेगा फिर भी आत्मा का संबंध परमात्मा से है। इस प्रकार की स्मृति से भगवान बुद्धियोग देते हैं। भगवान के साथ संबंध भक्ति करो, गौरव भक्ति करो तो आपकी स्मृति में भक्तियोग बढ़ेगा। ❐

(पृष्ठ १७ 'सच्चे तीर्थ' का शेष) ऐसा मिलता है कि बस सकुर-सकुर पी ले। बछड़े को तो मुँह हिलाना पड़ता है लेकिन सद्गुरुरूपी माँ ने जन्म-जन्म से जो कमाई की, अब भी घंटों भर ध्यान-समाधि और रब के साथ एकाकार होते हैं... तो गाय तो खड़ी होती है और बच्चे को सिर हिलाना पड़ता है दूध पीने के लिए लेकिन यहाँ शिष्यरूपी बछड़े खड़े नहीं होते, प्रयत्न नहीं करते, बैठे रहते हैं और गुरुरूपी गाय ही अपने अनुभव का अमृत रब को छुआकर कानों के द्वारा हृदय में भर देती है।

तीरथ नहाये एक फल, संत मिले फल चार।
सद्गुरु मिले अनंत फल, कहत कबीर विचार॥

न अंतः इति अनन्तः। जिसका अंत न हो उसे बोलते हैं अनंत। ये सारे फल अंतवाले हैं और दुःख देनेवाले हैं। सत्‌शिष्य का जो फल है वह अनंत फल है, जिसका अंत मौत भी नहीं कर सकती। ❐

सदोष और निर्दोष सुख

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

जिन-जिन लोगों ने पूर्व समय में मनुष्य-जन्म पाकर समय, शक्ति का सदुपयोग नहीं किया वे ही अभी वृक्ष, कीट-पतंग आदि योनियों में दुःखी, परेशान होते दिखायी देते हैं।

भगवान ने हमें दुःखी बनाने के लिए थोड़े ही पैदा किया था? शुद्ध सुख में हमारी गति हो जाय इसीलिए तो मनुष्य-जन्म दिया था और हमने उसका दुरुपयोग कर दिया, निर्दोष सुख न लिया। मनुष्य जितना ज्यादा सदोष (दोषयुक्त) सुख लेता है, उसे फिर उतना ही ज्यादा हलकी योनियों में जाना पड़ता है।

हम सदोष सुख लेते-लेते इतने दोषी हो जाते हैं कि फिर चौरासी लाख योनियों में जन्म लेना पड़ता है। जो बहुत विलासी होता है वह पेड़ बन जाता है, फिर कुल्हाड़े की मार, पक्षियों की चोंचें, आँधी-तूफान आदि सहता है और फरियाद करने की, कुछ कहने की क्षमता नहीं रहती। पशु बनो, जंतु बनो... क्यों? क्योंकि मनुष्य-जन्म मिला था जिस निर्दोष सुख को लेने के लिए, उस सुख के लिए तो कुछ किया नहीं, सदोष सुख में ही जीवन गँवा दिया।

ऐसे लोग जिनका ज्यादा विलासी-विकारी जीवन नहीं है वे दुबारा मनुष्य बन जाते हैं और यदि वे थोड़ा निर्दोष सुख लेने की तरफ, भक्ति

की तरफ बढ़ते हैं तो देवता बन जाते हैं । लेकिन यदि जीते-जी कोई आत्मवेत्ता महापुरुष मिल गये और शुद्ध सुख, निर्दोष सुख लिया तो निर्दोष सुख लेते-लेते स्वयं निर्दोष हो जायेगा, फिर चौरासी लाख जन्मों में मिलनेवाली पीड़ा सब माफ हो जाती है । निर्दोष आदमी को सजा थोड़े ही होती है ! निर्दोष ब्रह्म हो जाता है । इसलिए निर्दोष सुख लेना चाहिए । निर्दोष सुख तो अपना-आपा है । निर्दोष सुख लेनेवाला स्वयं भी दुःखी नहीं होता और दूसरे का भी शोषण नहीं करता । सदोष सुख लेनेवाला स्वयं भी पीड़ित होता है और दूसरों को भी पीड़ा पहुँचाता है ।

साधू ऐसा चाहिए दुखे दुखावे नाहिं ।
फूल पात तोड़े नहीं रहे बगीचे माँहिं ॥

संसाररूपी बगीचे में रहे लेकिन दूसरे को दुःख नहीं दे और खुद भी दुःखी न हो । भोगी आदमी स्वयं भी दुःखी होता है, औरों को भी दुःख देता है, औरों से भी ठगी-बेईमानी करता है ।

बोले : 'बच्चों के लिए, पत्नी-परिवार के लिए इतना तो करना पड़ता है ।'

अरे ! ये सब चीजें साथ में चलेंगी नहीं लेकिन इनको प्राप्त करने के लिए जो कूड़-कपट, पाप किया वे सब साथ में चलेंगे । जिस शरीर की सुविधा के लिए इतने-इतने पापकर्म किये, वह शरीर तो इधर ही जला देना है लेकिन गलत कर्म करके जो मन मलिन बनाया वह तो साथ में चलेगा । इस शरीर को सुखी करने के लिए, ऐश कराने के लिए क्या-क्या किया - दारू पिया, मांस खाया, झूठ बोले... । यह शरीर तो एक दिन जला देना है । तो जिसको जला देना हैं उसके लिए सारी जिन्दगी दोषयुक्त कर्म किये और मर जाने के बाद जो अंतःकरण साथ में चलेगा वह भी दोषी हो गया । जड़ शरीर की तरफ लगाव ज्यादा हो गया तो फिर वृक्ष, हाथी, भैंसा आदि की देह मिलती रहेगी । जड़ शरीर के साथ जितनी प्रीति, उतना फिर अपना अंतःकरण जड़ीभाव को प्राप्त होता है । निर्दोष सुख, आत्मा की तरफ जितनी प्रीति, उतना अंतःकरण आत्मामय हो जाता है । जैसे पानी है न, दूध में मिलाओ तो दूध का रंग और शराब में मिलाओ तो शराब का रंग पकड़ लेता है, ऐसे ही मन को देह के साथ मिलाओ तो देहमय हो जायेगा । पटेल, सिंधी, गुजराती जिस भाव के साथ मिलाओ, वैसा अपने-आपको मानने लग जायेगा । ऊपर-ऊपर से मानने लगे और अंदर से जाने कि 'यह सब कल्पना है, वास्तव में मैं चैतन्य आत्मा हूँ' तो कोई हरकत नहीं । लेकिन अब उसी मन को ब्रह्म में मिला दो जिससे वह ब्रह्म हो जाय । निर्दोष सुख लेने से मनुष्य स्वयं निहाल हो जाता है और जो उसके संपर्क में आते हैं उनका भी बेड़ा पार हो जाता है । जैसे भगवान रामजी थे, गुरु की सेवा की, गुरु की आज्ञा में रहे, आत्मविचार किया, 'स्व' के सच्चिदानंद स्वभाव को जाना तो कैसा जीवन बना लिया ! निर्दोष सुख लिया तो स्वयं सुखी हुए और उनका सुमिरन करके अभी हजारों लोगों को शांति मिलती है । जबकि रावण ने सत्ता का, पद का, विलास का सदोष सुख लिया तो अभी भी हर वर्ष दे दीयासलाई !

तो कोई भी ज्ञानी संत होंगे तो उनके पास श्रद्धापूर्वक जाने से सत्संगियों को, सज्जनों को लगेगा ये बाबा अपने हैं, उनके प्रति अपनत्व लगेगा क्योंकि वे निर्दोष आत्मामय हो गये हैं और आत्मा तो सबके निकट है । इसीलिए हमलोग कहते हैं : 'राम राम राम, मेरे राम... ।' 'मेरे रावण, मेरे रावण...' - ऐसा नहीं कह पायेंगे । 'मेरा सिकंदर, मेरा सिकंदर...' नहीं कह पायेंगे । हम जो दोष, अहंकार को पोसकर सुख लेना चाहते हैं, वह सदोष सुख है और जो आत्मा की ओर होकर सुखी होना चाहते हैं वह निर्दोष सुख है । संसार में विष और अमृत दोनों चीजें मिलती हैं, पसंदगी तुम्हारी है । रीति-रिवाज, रिश्ते-नाते, भाईचारा,

वाहवाही आदि द्वारा अहंकार बढ़ानेवाला वातावरण भी मिलेगा और जिसकी सत्ता से देह चलती है वह चैतन्य परमात्मा ही सब कुछ है, ऐसा करके अपने अहंकार को विसर्जित करानेवाला सत्संग भी मिलेगा। अहंकार तो देह में होगा। देह को जो सुखी करना चाहते हैं वे सदोष सुख चाहते हैं।

बोले : 'फिर संत-महात्मा भी तो बिस्तर पर बैठते हैं, सोते हैं, गद्दी पर बैठते हैं, फूलहार-मालाएँ पहनते हैं, कार में, जहाज में घूमते हैं वे भी तो मजा लेते हैं।'

देखो, साधु-महात्मा जहाज में, कार में बैठते हैं लेकिन उनका साधु बनने का उद्देश्य क्या है ?

जहाज में बैठने के लिए, फूलमाला पहनने के लिए अगर साधु बने हैं तो ऐसे साधुओं को कोई पूछता भी नहीं । जो परमात्मा के लिए साधुताई में उतर आये हैं उनको तो कार में, जहाज में या इन वस्तुओं में सुखबुद्धि नहीं होती। वे इन उपकरणों का उपयोगमात्र करते हैं। दूसरों को निर्दोष सुख, ईश्वर का रस पहुँचाने के लिए इन साधनों का उपयोग करते हैं । अब किसी महात्मा को दरिया-पार जाना है तो चलकर तो जायेंगे नहीं, साधन का उपयोग तो करेंगे ही।

देखो, एक आदमी है जो मनौतियाँ मानता है कि जहाज में बैठ जाऊँगा तो प्रसाद बाटूँगा, नारियल फोडूँगा। वह पैसा भी खर्च रहा है और जहाज की यात्रा करने के बाद नारियल भी फोड़ता है, प्रसाद भी बाँटता है, खुशियाँ मनाता है। लेकिन जहाज में नौकरी करनेवाले पायलट तथा दूसरे मददगार लोग जहाज में बैठते भी हैं, ऊपर से पैसा भी लेते हैं और घड़ी देखते रहते हैं कि कब समय पूरा हो। ड्यूटी पूरी हुई तो 'हाश ! जान छूटी !' करके घर पहुँचते हैं क्योंकि वे सुख लेने के लिए जहाज में नहीं बैठते, ड्यूटी के लिए बैठते हैं। जैसे यात्री सैर करने को जाता है, ऐसे पायलट के मन में सैरबुद्धि नहीं है। साधन में होते हुए भी उसमें सुखबुद्धि नहीं है। ऐसे ही देहरूपी साधन में ब्रह्मवेत्ता भी होगा और अज्ञानी भी होगा, बुद्धू भी होगा और बुद्ध भी होगा लेकिन बुद्धू शरीररूपी साधन में सुखबुद्धि करके जियेगा और बुद्धपुरुष शरीररूपी साधन का उपयोग करने के लिए जियेगा। यात्री और पायलट दोनों बैठे तो हैं जहाज में लेकिन एक ड्यूटी कर रहा है, दूसरा सैर करने जा रहा है। ऐसे ही हमलोग इस शरीर में जी रहे हैं, जा रहे हैं, आ रहे हैं तो सैर करने की बुद्धि से जी रहे हैं कि किसीके उपयोग में आने के लिए जी रहे हैं ? अगर किसीके उपयोग में आने के लिए जी रहे हैं, खा-पी रहे हैं, जहाज में आ-जा रहे हैं तो हो गया निर्दोष जीवन और विलास करने के लिए जी रहे हैं तो हो गया सदोष जीवन।

मनुष्य-जन्म में संभावना है। आप जितना महान होना चाहें, जितना ऊँचा उठना चाहें उठ सकते हैं और जितना नीचे गिरना चाहें गिर भी सकते हैं। अपना जीवन ईश्वर के ज्ञान से, ईश्वर की भक्ति से, सेवा से, परोपकार से, निर्दोषता से जितना भरना चाहें उतना भर सकते हैं और जितना खाली कर डालें उतना खाली हो सकता है। पुण्यकर्म करके ऊँचा उठना यह मनुष्य-जन्म का तप है। पशु पुण्य नहीं कर सकता, पाप मिटा नहीं सकता। मनुष्य कर्म को काट भी सकता है, कर्म बढ़ा भी सकता है।

एहि तन कर फल बिषय न भाई।

(श्री रामचरित. उ.कां. : ४३.१)

यह शरीर विषयभोग के लिए नहीं मिला। यह शरीर मिला है निर्दोष परमात्मा का सुख लेने के लिए, शुद्ध आनंद लेने के लिए। शुद्ध कृत्य करते-करते हृदय शुद्ध होता जायेगा। हृदय जितना शुद्ध होगा उतना शांत रहेगा और जितना शांत रहेगा उतना शांतस्वरूप परमात्मा के करीब आ जायेगा। इसके लिए केवल तड़प हो जाय बस, बाकी का काम तो भगवान कर देते हैं। ☐

गुरुभक्तियोग

- स्वामी श्री शिवानंदजी सरस्वती

याद रखना चाहिए कि मनुष्य की अंतरात्मा पाशवी वृत्तियों, भावनाओं तथा प्राकृत वासनाओं के जाल में फँसी हुई है । मनुष्य के मन की वृत्ति विषय और अहं की ओर ही जायेगी, आध्यात्मिक मार्ग में नहीं मुड़ेगी । आत्मसाक्षात्कार की सर्वोच्च भूमिका में स्थित गुरु में शिष्य अगर अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण समर्पण कर दे तो साधना-मार्ग के ऐसे भयस्थानों से बच सकता है । ऐसा साधक संसार से परे दिव्य प्रकाश को प्राप्त कर सकता है । मनुष्य की बुद्धि एवं अंतरात्मा को जिस प्रकार निर्मित किया जाता है, अभ्यस्त किया जाता है उसी प्रकार वे कार्य करते हैं । सामान्यतः वे दृश्यमान मायाजगत तथा विषय-वस्तु की आकांक्षा एवं अहं की आकांक्षा पूर्ण करने के लिए कार्यरत रहते हैं । सजग प्रयत्न के बिना वे आध्यात्मिक ज्ञान के उच्च सत्य को प्राप्त करने के लिए कार्यरत नहीं होते ।

'गुरु की आवश्यकता नहीं है और हरेक को अपनी विवेक-बुद्धि तथा अंतरात्मा का अनुसरण करना चाहिए'- ऐसे मत का प्रचार-प्रसार करनेवाले भूल जाते हैं कि ऐसे मत का प्रचार करके वे स्वयं गुरु की तरह प्रस्तुत हो रहे हैं । 'किसी भी शिक्षक की आवश्यकता नहीं है'- ऐसा सिखानेवालों को उनके ही शिष्य मान-पान और भक्तिभाव अर्पित करते हैं । भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को बोध दिया कि 'तुम स्वयं ही तार्किक विश्लेषण करके मेरे सिद्धांत की योग्यता-अयोग्यता और सत्यता की जाँच करो । 'बुद्ध कहते हैं' इसलिए सिद्धांत को सत्य मानकर स्वीकार कर लो ऐसा नहीं ।' किसी भी भगवान की पूजा नहीं करना, ऐसा उन्होंने सिखाया लेकिन इसका परिणाम यह आया कि महान गुरु एवं भगवान के रूप में उनकी ही पूजा शुरू हो गयी । इस प्रकार 'स्वयं ही चिंतन करना चाहिए और गुरु की आवश्यकता नहीं है' इस मत की शिक्षा से स्वाभाविक ही सीखनेवाले के लिए गुरु की आवश्यकता का इनकार नहीं हो सकता । मनुष्य के अनुभव कर्ता-कर्म के परस्पर संबंध की प्रक्रिया पर आधारित हैं ।

पश्चिम में कुछ लोग मानते हैं कि गुरु पर शिष्य का अवलम्बन एक मानसिक बंधन है । मानस-चिकित्सा के मुताबिक ऐसे बंधन से मुक्त होना जरूरी है । यहाँ यह स्पष्ट करना अत्यंत आवश्यक है कि मानस-चिकित्सावाले मानसिक परावलम्बन से, गुरु-शिष्य का संबंध बिल्कुल भिन्न है । गुरु की उच्च चेतना के आश्रय में शिष्य अपना व्यक्तित्व समर्पित करता है । गुरु की उच्च चेतना शिष्य की चेतना को आवृत कर लेती है और उसका ऊर्ध्वीकरण करती है । गुरु-शिष्य का व्यक्तिगत संबंध एवं शिष्य का गुरु पर अवलम्बन केवल प्रारंभ में ही होता है, बाद में तो वह परब्रह्म की शरणागति बन जाता है । गुरु सनातन शक्ति के प्रतीक बनते हैं । किसी दर्दी का मानस-चिकित्सक के प्रति परावलम्बन का संबंध तोड़ना अनिवार्य है क्योंकि यह संबंध दर्दी का मानसिक तनाव कम करने के लिए केवल अस्थायी संबंध है । जब चिकित्सा पूरी हो जाती है तब यह परावलम्बन तोड़ दिया जाता है और दर्दी पूर्व की भाँति अलग और स्वतंत्र हो जाता है । किंतु गुरु-शिष्य के संबंध में प्रारंभ में या अंत में कभी भी अनिच्छनीय परावलम्बन नहीं होता । यह तो केवल पराशक्ति पर ही अवलम्बन होता है । गुरु को देहस्वरूप में या एक व्यक्ति के स्वरूप में नहीं माना जाता अपितु परम सत्य के प्रतिनिधि के रूप में माना जाता है । गुरु पर अवलम्बन शिष्य के पक्ष में देखा जाय तो आत्मशुद्धि की निरंतर प्रक्रिया है, जिसके द्वारा शिष्य ईश्वरीय परम तत्त्व का अंतिम लक्ष्य प्राप्त कर सकता है । ❐

प्रश्न : पूज्य बापूजी ! मैंने **'वासुदेवः सर्वम्'** इस मंत्र को आत्मसात् करने का लक्ष्य बनाया था। भले लोगों में तो वासुदेव का दर्शन संभव लगता है परंतु बुरे लोगों में, बुरी वस्तुओं में नहीं लगता तो इस हेतु क्या किया जाय ?

पूज्य बापूजी : गुरुजी वासुदेवस्वरूप हैं, श्रीकृष्ण, गायें आदि वासुदेवस्वरूप हैं- इस प्रकार की भावना तो बन सकती है परंतु जो हमारे सामने ही बदमाशी कर रहा हो उसको वासुदेव कैसे मानें ? कोई बदमाशी कर रहा है, तुम्हें ठग रहा है तो सावधान तो रहो लेकिन उसमें भी वासुदेव के स्वरूप की ही भावना करो। जैसे भगवान श्रीकृष्ण मक्खनचोरी की लीला करते थे, तब प्रभावती नामक गोपी सावधान तो रहती थी लेकिन श्रीकृष्ण को देखकर आनंदित भी होती थी कि 'वासुदेव कैसी-कैसी अठखेलियाँ कर रहा है !' ऐसे ही यदि कोई क्रूर आदमी हो तो समझो कि 'वासुदेव नृसिंह अवतार की लीला कर रहे हैं' और कोई युक्ति लड़ानेवाला हो तो समझ लो कि 'वासुदेव श्रीकृष्ण की लीला कर रहे हैं।' कोई एकदम गुस्सेबाज हो तो समझना, 'वासुदेव शिव के रूप में लीला कर रहे हैं।' अच्छे-बुरे, सबमें वासुदेव ही लीला कर रहे हैं, इस प्रकार का भाव बना लो।

वास्तव में तो सब वासुदेव ही हैं, भला-बुरा तो ऊपर-ऊपर से दिखता है । जैसे वास्तव में पानी है परंतु बोलते हैं कि गंदी तरंगों में पानी की भावना कैसे करें ? नाली में गंगाजल की भावना कैसे करें ? अरे, नाली का वाष्पीभूत पानी फिर गंगाजल बन जाता है और वही गंगाजल नाली में आ जाता है । ऐसे ही वासुदेव अनेक रूपों में दिखते रहते हैं ।

प्रश्न : पूज्य बापूजी ! हमारा लक्ष्य ईश्वरप्राप्ति है परंतु व्यवहार में हम यह भूल जाते हैं और भटक जाते हैं । कृपया व्यवहार में भी अपने लक्ष्य को सदैव याद रखने की युक्ति बतायें ।

पूज्य बापूजी : कटहल की सब्जी बनाने के लिए जब उसे काटते हैं, तब पहले हाथ में तेल लगा लेते हैं ताकि उसका दूध चिपके नहीं । नहीं तो वह हाथ से उतरता नहीं है । ऐसे ही पहले भगवद्भक्ति, भगवत्पुकार, भगवज्जप, भगवद्ध्यान आदि की चिकनाहट हृदय में रगड़कर फिर संसार का व्यवहार करोगे तो संसार भी नहीं चिपकेगा और तुम्हारा काम भी हो जायेगा।

प्रश्न : गुरुवर ! आत्मचिंतन कैसे करें ?

पूज्य बापूजी : जो लोग आत्मचिंतन नहीं करते वे सुख-दुःख में डूबकर खप जाते हैं लेकिन आत्मचिंतन करनेवाले साधक तो दोनों का मजा लेते हैं। आत्मचिंतन अर्थात् जहाँ से अपना 'मैं' उठता है, जो सत्-चित्-आनंदस्वरूप है, जो दुःख को देखता है और सुख को जानता है वह कौन है ? ऐसा चिंतन।

'हानि और लाभ आ-आकर चले जाते हैं परंतु मैं कौन हूँ ? ॐ ॐ...' ऐसा करके शांत हो जाओ तो भीतर से उत्तर भी आयेगा और अनुभव भी होगा कि 'मैं इनको देखनेवाला द्रष्टा, साक्षी, असंग हूँ।'

'विचार चंद्रोदय, विचारसागर, श्री योगवासिष्ठ महारामायण' इत्यादि आत्मचिंतन के ग्रंथों का अध्ययन अथवा जिनको ईश्वर की प्राप्ति हो गयी है, उन्होंने ईश्वर तथा आत्मदेव के विषय में जो कहा है वह आश्रम की 'श्री नारायण स्तुति' पुस्तक में संकलित किया है, उसे पढ़ते-पढ़ते शांत हो जाओ, हो गया आत्मचिंतन ! ❐

सत्यमेव जयते !

सदैव सत्य, प्रिय एवं हितकर बोलो । जो व्यक्ति झूठ बोलता है, उसकी वाणी का प्रभाव कम हो जाता है, उसके दिल की धड़कनें बढ़ जाती हैं और जो सत्य बोलता है, मधुर बोलता है, उसकी हिम्मत बढ़ जाती है । जो लोग बोलते हैं कि झूठ बोले बिना व्यापार नहीं चलता, उन लोगों को सत्य के प्रभाव का पता ही नहीं है ।

किसी सब्जीमंडी में एक लड़के ने फल-सब्जी का ठेला लगाया था । उसकी बगल में ही एक दूसरा लड़का भी फल-सब्जी बेचता था । एक दिन दोपहर को एक आदमी पहले लड़के के ठेले पर आकर एक बड़ा तरबूज हाथ में लेकर बोला : ''यह तरबूज अच्छा है ?''

लड़का : ''महाशयजी ! अच्छे तरबूज सब बिक चुके हैं । यह तरबूज देखने में तो अच्छा जान पड़ता है लेकिन सड़ा और फीका है ।''

उस आदमी ने दूसरे ठेले पर जाने से पहले उससे कहा : ''तू ईमानदार है लेकिन ऐसा करने से तेरी बिक्री नहीं होगी ।''

लड़के ने जवाब दिया : ''मैं सत्य कहकर बेचूँगा । फिर बिक्री कम हो या ज्यादा, मुझे सब स्वीकार है ।''

फिर वह आदमी बगलवाले ठेले पर गया और पूछा : ''भाई ! यह ककड़ी ताजी है ?''

ककड़ी बेचनेवाले लड़के ने कहा : ''हाँ साहब ! ताजी है ।''

उस आदमी ने ककड़ी खरीद ली और घर चला गया । उसके जाने के बाद ककड़ीवाले लड़के ने तरबूजवाले लड़के से कहा : ''तू मूर्ख है ! तुझे अपने माल के लिए ऐसा नहीं कहना चाहिए । देख, मैंने अपनी ककड़ी जो तीन दिन की थी, ताजी कहकर बेच दी । अब तुझको यह तरबूज फेंकना पड़ेगा ।''

यह सुनकर उस लड़के ने कहा : ''नहीं बिके तो इसकी मुझे फिक्र नहीं लेकिन मैं झूठ कभी नहीं बोलूँगा । मैं सच बोलता हूँ तो इससे मुझे बहुत शांति मिलती है ।''

उधर उस आदमी ने ककड़ी काटी तो खराब निकली । उसने सोचा कि 'ककड़ीवाले लड़के ने मुझे ठग लिया ।' अगले दिन से वह आदमी तरबूजवाले उस ईमानदार लड़के के ठेले से ही सब लेने लगा । उस ककड़ी बेचनेवाले से वह कुछ भी नहीं लेता था । धीरे-धीरे उस फल बेचनेवाले लड़के की ईमानदारी की बात पूरे शहर में फैल गयी और उसके यहाँ बहुत-से ग्राहक आने लगे । अंत में वह एक बहुत बड़ा व्यापारी बना परंतु उस पड़ोसी लड़के की कंगालियत पहले जैसी बनी रही ।

झूठे आदमी की कीमत घट जाती है, उसकी विश्वसनीयता और प्रभाव चला जाता है । अपना आचरण-व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि अपने लोग तो अपने पर विश्वास करें ही, दूसरे लोग भी विश्वास करें । दुकानदार पर ग्राहक की विश्वसनीयता होती है तभी वह सफल दुकानदार होता है ।

सत्य ही भगवान है और झूठ-कपट शैतान है । जो सत्य की तरफ झुका समझो, वह ईश्वर की तरफ झुका और जो कपट की तरफ झुका वह मुसीबत की तरफ झुका । अतः छल-कपट का सर्वथा त्याग करें और सत्य का ही आश्रय लें । □

बिना मृत्यु के नया जन्म !

एक चोर ने राजा के महल में चोरी की। सिपाहियों को पता चला तो उन्होंने उसके पदचिह्नों का पीछा किया। पीछा करते-करते वे नगर से बाहर आ गये। पास में एक गाँव था। उन्होंने चोर के पदचिह्न गाँव की ओर जाते देखे। गाँव में जाकर उन्होंने देखा कि एक जगह संत सत्संग कर रहे हैं और बहुत-से लोग बैठकर सुन रहे हैं। चोर के पदचिह्न भी उसी ओर जा रहे थे। सिपाहियों को संदेह हुआ कि चोर भी सत्संग में लोगों के बीच बैठा होगा। वे वहीं खड़े रहकर उसका इंतजार करने लगे।

सत्संग में संत कह रहे थे - जो मनुष्य सच्चे हृदय से भगवान की शरण चला जाता है, भगवान उसके संपूर्ण पापों को माफ कर देते हैं। 'गीता' में भगवान ने कहा है :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

'सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।' (१८.६६)

वाल्मीकि रामायण (६.१८.३३) में आता है :

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

'जो एक बार भी मेरी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर रक्षा की याचना करता है, उसे मैं संपूर्ण प्राणियों से अभय कर देता हूँ - यह मेरा व्रत है।'

इसकी व्याख्या करते हुए संतश्री ने कहा - जो भगवान का हो गया, उसका मानों दूसरा जन्म हो गया। अब वह पापी नहीं रहा, साधु हो गया।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिए। कारण कि उसने बहुत अच्छी तरह से निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।'

(गीता : ९.३०)

चोर वहीं बैठा सब सुन रहा था। उस पर सत्संग की बातों का बहुत असर पड़ा। उसने वहीं बैठे-बैठे यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि 'अभी से मैं भगवान की शरण लेता हूँ, अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा। मैं भगवान का हो गया।' सत्संग समाप्त हुआ। लोग उठकर बाहर जाने लगे। बाहर राजा के सिपाही चोर के पदचिह्नों की तलाश में थे। चोर बाहर निकला तो सिपाहियों ने उसके पदचिह्नों को पहचान लिया और उसको पकड़के राजा के सामने पेश किया।

राजा ने चोर से पूछा : "इस महल में तुम्हींने चोरी की है न ? सच-सच बताओ, तुमने चुराया हुआ धन कहाँ रखा है ?"

चोर ने दृढ़तापूर्वक कहा : "महाराज ! इस जन्म में मैंने कोई चोरी नहीं की।"

सिपाही बोला : "महाराज ! यह झूठ बोलता है। हम इसके पदचिह्नों को पहचानते हैं। इसके पदचिह्न चोर के पदचिह्नों से मिलते हैं, इससे

साफ सिद्ध होता है कि चोरी इसीने की है ।''

राजा ने चोर की परीक्षा लेने की आज्ञा दी, जिससे पता चले कि वह झूठा है या सच्चा ।

चोर के हाथ पर पीपल के ढ़ाई पत्ते रखकर उसको कच्चे सूत से बाँध दिया गया । फिर उसके ऊपर गर्म करके लाल किया हुआ लोहा रखा परंतु उसका हाथ जलना तो दूर रहा, पत्ते और सूत भी नहीं जला । लोहा नीचे जमीन पर रखा तो वह जगह काली हो गयी । राजा ने सोचा कि 'वास्तव में इसने चोरी नहीं की, यह निर्दोष है ।'

अब राजा सिपाहियों पर बहुत नाराज हुआ कि ''तुम लोगों ने एक निर्दोष पुरुष पर चोरी का आरोप लगाया है । तुम लोगों को दण्ड दिया जायेगा ।'' यह सुनकर चोर बोला : ''नहीं महाराज ! आप इनको दण्ड न दें । इनका कोई दोष नहीं है । चोरी मैंने ही की थी ।''

राजा ने सोचा कि 'यह साधुपुरुष है, इसलिए सिपाहियों को दण्ड से बचाने के लिए चोरी का दोष अपने सिर पर ले रहा है ।'

राजा बोला : ''तुम इन पर दया करके इनको बचाने के लिए ऐसा कह रहे हो पर मैं इन्हें दण्ड अवश्य दूँगा ।''

चोर बोला : ''महाराज ! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ, चोरी मैंने ही की थी । अगर आपको विश्वास न हो तो अपने आदमियों को मेरे साथ भेजो । मैंने चोरी का धन जंगल में जहाँ छिपा रखा है, वहाँ से लाकर दिखा दूँगा ।''

राजा ने अपने आदमियों को चोर के साथ भेजा । चोर उनको वहाँ ले गया, जहाँ उसने धन छिपा रखा था और वहाँ से धन लाकर राजा के सामने रख दिया । यह देखकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ ।

राजा बोला : ''अगर तुमने ही चोरी की थी तो परीक्षा करने पर तुम्हारा हाथ क्यों नहीं जला ? तुम्हारा हाथ भी नहीं जला और तुमने चोरी का धन भी लाकर दे दिया, यह बात हमारी समझ में नहीं आ रही है । ठीक-ठीक बताओ, बात क्या है ?''

चोर बोला : ''महाराज ! मैंने चोरी करने के बाद धन को जंगल में छिपा दिया और गाँव में चला गया । वहाँ एक जगह सत्संग हो रहा था । मैं वहाँ जाकर लोगों के बीच बैठ गया । सत्संग में मैंने सुना कि 'जो भगवान की शरण लेकर पुनः पाप न करने का निश्चय कर लेता है, उसको भगवान सब पापों से मुक्त कर देते हैं । उसका नया जन्म हो जाता है ।' इस बात का मुझ पर असर पड़ा और मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि 'अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा । अब मैं भगवान का हो गया ।' इसलिए तब से मेरा नया जन्म हो गया । इस जन्म में मैंने कोई चोरी नहीं की, इसलिए मेरा हाथ नहीं जला । आपके महल में मैंने जो चोरी की थी, वह तो पिछले जन्म में की थी ।''

कैसा दिव्य प्रभाव है सत्संग का ! मात्र कुछ क्षण के सत्संग ने चोर का जीवन ही पलट दिया । उसे सही समझ देकर पुण्यात्मा, धर्मात्मा बना दिया । चोर सत्संग-वचनों में दृढ़ निष्ठा से कठोर परीक्षा में भी सफल हो गया और उसका जीवन बदल गया । राजा प्रभावित हुआ, प्रजा से भी सम्मानित हुआ और प्रभु के रास्ते चलकर प्रभुकृपा से परम पद को भी पा लिया । सत्संग पापी-से-पापी व्यक्ति को भी पुण्यात्मा बना देता है । जीवन में सत्संग नहीं होगा तो आदमी कुसंग जरूर करेगा । कुसंगी व्यक्ति कुकर्म कर अपनेको पतन के गर्त में गिरा देता है लेकिन सत्संग व्यक्ति को तार देता है, महान बना देता है । ऐसी महान ताकत है सत्संग में ! ❑
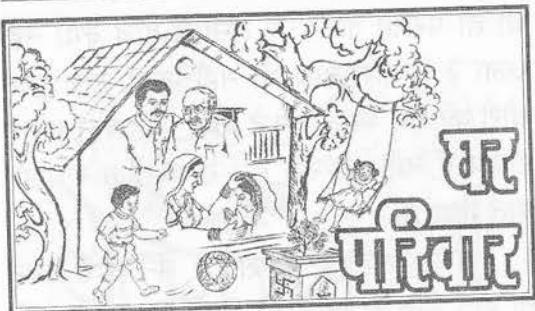
सच्ची क्षमा

सन् १९५६ के आस-पास की घटना है। एक तहसीलदार थे। उनका गृहस्थ-जीवन बड़ा दुःखमय था क्योंकि उनकी धर्मपत्नी ठीक समय पर भोजन नहीं बना पाती थी, जिस कारण उन्हें कार्यालय पहुँचने में अक्सर बहुत देर हो जाती थी। उन्होंने पत्नी को हर तरह से समझाया। कई बार कठोर व्यवहार भी किया, मारपीट भी की लेकिन पत्नी की गलती में सुधार होने के बजाय गलती बढ़ती ही गयी। वे इतने परेशान हो गये कि उनके मन में विचार आता, 'यह घर छोड़कर चला जाऊँ या पत्नी को तलाक दे दूँ अथवा तो इसकी हत्या कर दूँ या खुद आत्महत्या कर लूँ।' उनकी मानसिक परेशानी चरम सीमा पर पहुँच गयी; घर श्मशान की तरह लगने लगा, नींद आना बंद हो गया, शारीरिक रोग सताने लगे।

प्रभुकृपा से एक बार वे किन्हीं संत के पास गये। भारी हृदय और बहते आँसुओं से उन्होंने अपनी इस पारिवारिक समस्या को संतश्री के सामने रखा। संत करुणा बरसाते हुए हँसकर बोले : ''यह तो कोई समस्या ही नहीं है, अभी हल कर देते हैं ! चलो, कल तुम्हारी पत्नी यदि समय पर भोजन न बनाये तो तुम सुबह चुपचाप भूखे पेट ही कार्यालय चले जाना। सावधान ! न वाणी से, न आँखों से, न हाथों से, न पैरों से और न व्यवहार से कुछ बोलना। मन व हृदय से भी कुछ मत बोलना, चुपचाप चले जाना; भूख लगे तो कार्यालय में ही कुछ खा लेना। अभी तो 'हरि ॐ शांति, हरि ॐ शांति... ॐ उदारता...'- ऐसा चिंतन करो। जो समस्याओं को हर ले और अपने शांत स्वभाव को हमारे चित्त में भर दे, उसे प्रीतिपूर्वक पुकारो। हरि ॐ शांति, हरि ॐ शांति...

बहुत गयी थोड़ी रही, व्याकुल मन मत होय।
धीरज सबका मित्र है, करी कमाई मत खोय ॥

इस चिंतन में चित्त को शांत और प्रसन्न रखना। तीन-चार दिन तक ऐसे ही करना।''

तहसीलदार ने पूछा : ''महाराज ! वाणी से नहीं बोलूँगा लेकिन आँख, हाथ, पैर, व्यवहार, हृदय व मन से न बोलने का क्या अर्थ है ?''

संत ने उत्तर दिया : ''मन से उसे बुरा मत समझना, मन से उस पर क्रोध मत करना, वाणी से उसे डाँटना मत, आँख मत दिखाना, हाथों से मारना मत, पैर पटकते हुए क्रोधित होकर मत जाना, व्यवहार से क्रोध का संकेत मत देना और हृदय में यह भाव रखना कि मुझे जो दुःख हुआ, उसका कारण तो मेरी ही भूल है। इसमें पत्नी की लेशमात्र भी गलती नहीं है, मैंने व्यर्थ ही उसे दुःख दिया, वह तो करुणा की पात्र है। प्रभु ! मुझे क्षमा करना, अब आप ही उसे सँभालना।''

संत के मुख से इन वाक्यों के श्रवणमात्र से उनका दहकता हुआ हृदय कुछ शांत हुआ, मानों जलते हुए घावों पर किसीने चंदन लगा दिया हो। संयोग की बात, अगले दिन फिर पत्नी ने समय पर भोजन नहीं बनाया। तहसीलदार ने संत के परामर्श का स्मरण किया। अंदर-बाहर एकदम शांत रहकर चुपचाप कार्यालय के लिए रवाना हो गये।

पत्नी पर तत्काल प्रभाव पड़ा। हृदय में भाव आया, 'आज वे चुपचाप चले गये, कुछ नहीं बोले। दिन भर भूखे रहेंगे, भोजन बनाने का कार्य तो मेरा है। मैं अपना कार्य समय पर नहीं कर पायी। मैं कैसी पत्नी हूँ, मैंने कितनी बार यह भूल की

है ।' पत्नी को भूल का एहसास हुआ । पश्चात्ताप के आँसू बहने लगे, हृदय से ही उसने पतिदेव से क्षमा माँगी और व्रत लिया कि 'अब मैं ठीक समय पर भोजन बनाऊँगी ।'

पति कार्यालय में बैठे हैं । पत्नी के हृदय की भाव-लहरियाँ तत्काल उनके हृदय तक पहुँच गयीं । उनके हृदय में भाव आया, 'मैं कैसा पति हूँ, एक मामूली-सी भूल के लिए मैं सदा अपनी जीवनसंगिनी का अपमान करता हूँ । मैंने उसे कभी प्रेम से नहीं समझाया । अगर मैं प्रेम से समझाता तो क्या वह भूल करती ? प्रेम से तो पशु भी वश हो जाते हैं ।' पति को अपनी भूल का एहसास हुआ । पश्चात्ताप की अग्नि में उनके दोष, खिन्नता जल गयी । कार्यालय में बैठे-बैठे ही उन्होंने मन-ही-मन पत्नी से क्षमा माँग ली और व्रत लिया, 'अब मैं ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा । आज घर पहुँचते ही सबसे पहले उससे क्षमायाचना करूँगा । फिर उसकी पसंद का भोजन बनवाकर उसे खिलाऊँगा, अपनी पसंद के भोजन के लिए पत्नी को कभी नहीं कहूँगा ।'

पति के हृदय की भाव-लहरियाँ पत्नी के हृदय तक पहुँचीं । विचार आया, 'मेरे पति मेरे सर्वस्व हैं । वे भूखे हैं । आज उनके आते ही मैं उनके चरणों में गिरकर क्षमा माँगूगी, उनके लिए भोजन बनाकर तैयार रखूँगी । उन्हें प्रेम से भोजन कराऊँगी । आज से मैं उन्हींकी पसंद का भोजन बनाया करूँगी । अब से पति की पसंद ही मेरी पसंद होगी ।'

शाम हो गयी, पति के घर आने का समय हो गया । पत्नी ने भोजन तैयार कर लिया । पति की प्रतीक्षा कर रही है, मन प्रेम व प्रसन्नता से भरा है । ज्यों ही पति ने दरवाजा खटखटाया, पत्नी ने खोला । तत्काल चरणों में गिर पड़ी, भरे कंठ से आवाज निकली : ''क्षमा कीजिये ।'' लेकिन पति भी पूरे सावधान थे । चरणों में गिरने से पहले ही पत्नी को उठा लिया; हृदय प्रेम से भर गया, धीमा स्वर निकला : ''मैंने तुम्हें सच्चा प्रेम नहीं दिया; दुःख दिया, अपमान किया । मुझे माफ करना ।'' दोनों के हृदयों में पवित्र प्रेम, आँखों में प्रेमाश्रु, शरीर पुलकित... सारा वातावरण प्रेम से परिपूर्ण हो गया । जीवन में आज पहली बार दोनों ने प्रेम से भोजन किया ।

तहसीलदार ने बताया कि उस दिन के बाद पत्नी से वह भूल कभी नहीं हुई । बहुत बार ऐसा भी हुआ कि मन में आया, 'आज अमुक-अमुक सब्जियाँ बननी चाहिए ।' पत्नी को नहीं बताया लेकिन भोजन करने बैठे तो वे ही सारी सब्जियाँ थाली में थीं । पत्नी को पति के हृदय के भावों का बिना बताये पता चल जाता । यह है सच्ची क्षमा का विलक्षण सुपरिणाम !

क्षमा आपको सच्ची शांति प्रदान करती है । शांति व सुख का आधार सांसारिक व्यक्ति और वस्तुएँ नहीं हैं क्योंकि संसार के व्यक्तियों व वस्तुओं के संयोग से आपको जो लौकिक सुख मिलता है वह उन व्यक्तियों व वस्तुओं के बिछुड़ने पर समाप्त होकर भयंकर दुःख व अशांति में बदल जाता है । शांति तो मिलती है सेवा, त्याग, प्रेम, विश्वास, क्षमा व विवेक के आदर से । जिसके जीवन में ये सब अलौकिक तत्त्व हैं, उसका विवेक जगता है, वैराग्य जगता है । 'दुःख और सुख मन की वृत्ति है, राग-द्वेष बुद्धि में है । दोनों को जाननेवाला मैं कौन हूँ ?'- सद्गुरु की कृपा से इसकी खोज कर आत्मा-परमात्मा की एकता का अनुपम अनुभव करके वह जीवन्मुक्त हो जाता है । जो आनंद भगवान ब्रह्मा, विष्णु और महेश को प्राप्त है, उसी आत्मा के आनंद को वह भक्त पा लेता है । विवेक से मनुष्य जब इतनी ऊँचाई को छू सकता है तो नाहक परेशानी, पाप और विकारों में पतित जीवन क्यों गुजारना ! ❐

सर्वार्थ-सिद्धि का मूल : सेवा

इस कलियुग में श्री शिवानंद स्वामी की पुस्तक 'गुरुभक्तियोग' गुरुभक्ति बढ़ाने में बड़ी मददगार है। उसमें लिखा है कि 'गुरुभक्तियोग एक सलामत योग है।' जिसे सलामत योग का फायदा उठाना है उसे 'गुरुभक्तियोग' पढ़ना चाहिए।

हमेशा सजाग रहो। 'मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए। जो है वह इष्ट का है, इष्ट के लिए है।' ऐसे भाव रखनेवाले सेवक को स्वामी सहज में मिल जाते हैं। जैसे संदीपक गुरु की सेवा में लग गया तो शिवजी बिन बुलाये आये, भगवान नारायण के दर्शन बिन बुलाये हो गये।

सेवा में माँग नहीं होती है, स्वार्थ नहीं होता है। सेवा हृदय से जुड़ी होती है। सेवा करनेवाले में अपने अधिकार की परवाह नहीं होती है। प्रीति है, सेवा है तो अधिकार उसका दास है। जैसे सेठ की कोई सेवा करता है तो क्या उसे सेठ के बँगले में रहने को नहीं मिलता है ? गाड़ी में बैठने को नहीं मिलता है ? ऐसे ही सेठों का सेठ जो गुरुतत्त्व है अथवा भगवान हैं, उनकी प्रसन्नता के लिए, उनकी प्रीति के लिए जब सेवा की जाती है तो उस सेवा में स्वार्थ नहीं होता। सेवा करते-करते सेवक इतना बलवान हो जाता है कि सेवा का बदला वह कुछ नहीं चाहता है फिर भी उसे उसका फल मिले बिना नहीं रहता है। उसके चित्त की शांति, आनंद, विवेक सेवा में उसकी सफलता की निशानी है।

सेवक का विवेक यही है कि सेवा करते समय जो भूल हुई वह दुबारा न हो, सावधान हो जाय। इससे तो उसकी कार्य करने की योग्यता और भी बढ़ जाती है। सेवा करते-करते सेवक स्वयं स्वामी बन जाता है; इन्द्रियों का, मन का, बुद्धि का स्वामी बन जाता है। अपने शरीर, मन, इन्द्रियों को 'मैं' मानने की गलती निकल जाती है। वह मन, इन्द्रियों और शरीर से पार हो जाता है, फिर चाहे वे तोटकाचार्यजी हों, पूरणपोड़ा हों अथवा एकनाथजी महाराज हों। प्रेम का आरंभ है निष्काम सेवा। प्रीति में कमी और लापरवाही के दुर्गुणवाला व्यक्ति कुत्ते से भी गया-बीता माना जाता है। ❑

न वेगान् धारयेत्

श्री चरकाचार्यजी ने स्वास्थ्य-रक्षक उपायों का वर्णन करते हुए कहा है : ''बुद्धिमान मनुष्य को आये हुए मल-मूत्र, अपानवायु, उलटी, छींक, डकार, जम्हाई, भूख, प्यास, अश्रु, निद्रा, खाँसी व परिश्रम से उत्पन्न श्वास के वेगों को नहीं रोकना चाहिए।''

उपर्युक्त वेग किसी-न-किसी अनिवार्य शारीरिक क्रिया के प्रतीक हैं। अतः इन्हें रोकने से हानि होने की संभावना बनी रहती है। वेग रोकने से तत्काल कोई परिणाम न भी दिखायी दे, फिर भी बार-बार वेग रोकने से कोई-न-कोई विकृति स्थायी रूप ले लेती है। जैसे नदी के प्रवाह को रोकने से जल उछलकर यत्र-तत्र फैल जाता है, वैसे ही वेगों को रोकने से वायु विलोम (उलटी गति) होकर इतस्ततः फैलकर रोगों को उत्पन्न करती है।

जैसे स्वाभाविक रूप से प्रवृत्त वेगों को नहीं रोकना चाहिए, वैसे ही उन्हें बलपूर्वक उत्पन्न भी नहीं करना चाहिए। वेगों को रोकना अथवा उत्पन्न करना यह वातविकारों का एक प्रमुख कारण है।

वस्त्र धोने के बाद निचोड़ते समय दोनों हाथों की होनेवाली विशिष्ट क्रिया से हृदय के स्नायु मजबूत बनते हैं।

भक्तों के अनुभव

देशातीत, कालातीत है गुरुतत्त्व

पूज्य बापूजी के श्रीचरणों में कोटि-कोटि वंदन ।

मैं डेन्टिस्ट हूँ और न्यूजर्सी (अमेरिका) में रहती हूँ । मैंने १९९९ में गाँधीनगर (गुजरात) में पूज्य बापूजी से मंत्रदीक्षा ली थी । मैं अभी पोस्ट ग्रेजुएशन कर रही हूँ और दीक्षा के प्रभाव से पढ़ाई में हुई मेरी उन्नति के कारण मुझे हमारी यूनिवर्सिटी द्वारा ३००० डॉलर की स्कॉलरशिप मिली है ।

२४ जनवरी २००९ की बात है । मैंने सुबह नियम किया व अपने काम पर चली गयी । कुछ मिनट बाद मेरे साथियों ने सूचना दी कि मेरे कमरे में आग लग गयी और पूरा कमरा जल गया है । आग इतनी भयंकर थी कि छः अग्निशामक वाहन घर पर आ गये थे । मैं भयभीत थी और समझ नहीं पा रही थी कि क्या करूँ । मैंने कैलिफोर्निया में रह रहे अपने भाई को फोन किया तो उसने कहा कि 'पूज्य बापूजी तुम्हारे साथ हैं, शांत रहकर गुरुमंत्र का जप करो ।'

मुझे बापूजी के फोटो, आसन व माला की चिंता थी । जब मैं घर लौटी तो मैंने देखा कि मेरे आसन, माला व बापूजी के फोटो को कुछ नहीं हुआ है । पूज्य बापूजी हमेशा की तरह मुस्करा रहे हैं । मेरे बापूजी के फोटो पर एक भी खरोंच या काला धब्बा नहीं है जबकि अन्य चीजें जलकर खाक हो चुकी थीं । आग के बीचों-बीच ये चीजें कैसे बचीं, यह सभीके लिए महा आश्चर्य का विषय बन गया था ।

मैं बापूजी को याद करती रही । मैंने अनुभव किया कि बापूजी न्यूजर्सी में भी मेरे साथ हैं । वह मेरा सबसे यादगार दिन था । इस घटना ने पूज्य बापूजी के प्रति मेरी श्रद्धा व लगन को और बढ़ा दिया है । मैं बापूजी के प्रति बहुत कृतज्ञ हूँ ।

- डॉ. कनक त्रिवेदी
९७ सरमन प्लेस, जर्सी सिटी, न्यूजर्सी (अमेरिका) । मो. : ०९७३७१६४६५५. ❐

संस्था समाचार

२ व ३ जून को गंगा दशहरा व निर्जला एकादशी के पर्वों पर **हरिद्वार आश्रम** में पूज्यश्री के सान्निध्य में जप-तप का लाभ लेकर भक्तों ने अखूट पुण्य का अर्जन किया । दस पापों का नाश करनेवाले गंगा दशहरा के पावन स्नान के साथ ही जन्म-जन्मांतर के संस्कार-मल को दूर करनेवाली सत्संग-गंगा में भी स्नान कर धन्य-धन्य हुए उपस्थित साधक, श्रद्धालु ।

कबीरजी, तुलसीदासजी जैसे महान संतों की कर्मभूमि काशी तथा अयोध्या जैसे मोक्षप्रदायक तीर्थों से विभूषित उत्तरप्रदेश की धरा इस बार पूज्य बापूजी की सत्संगामृत-वर्षा से संतृप्त हो पावन हुई । यहाँ की जनता किस कदर बापू के दर्शन-सत्संग की प्यासी थी, यह सत्संगों में उमड़ते जनसैलाब को देखकर पता चलता था ।

इस क्रम में पहले बाजी मारते हुए **मेरठ** ने **४ व ५ जून** का सत्संग अपनी झोली में ले लिया । मेरठवासियों को मनुष्य-जीवन की श्रेष्ठता के बारे में बताते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : ''कामना सभी जीवों में होती है लेकिन मनुष्य में दो चीजें ऐसी होती हैं जो और जीवों में नहीं होतीं । मनुष्य में कामना के साथ लालसा भी होती है और जिज्ञासा भी होती है । यह बहुत ऊँची चीज है । इस ऊँची चीज को महत्त्व दें और कामना को प्रारब्ध के, भगवान के हवाले छोड़ दें तो देखते-देखते मनुष्य महान आत्मा बन जायेगा ।''

इसे साधकों की फलीभूत प्रार्थना कहें या बापूजी की अनुग्रह-लीला कि **५ जून** को एक ही दिन सुबह **मेरठ**, दोपहर **मोदीनगर** और फिर **हापुड़** में सत्संग-आयोजन हुआ । बापूजी मोदीनगर पधारे तो वहाँ के साधक वासनाओं के वेग में बह रहे बाहरी जन-जीवन से ईश्वर-लालसा व तत्त्व-जिज्ञासा की ओर लौटने को लालायित हुए । बापूजी बोले : ''तुच्छ लोग 'यह मिले, वह मिले' में उलझते हैं, भक्त लोग

भगवान की प्रीति, भक्ति चाहते हैं किंतु 'भगवान जिससे भगवान हैं और हम जिससे हम हैं, वह कौन है ?'- इस जिज्ञासा द्वारा तत्त्वस्वरूप परब्रह्म को जाननेवाले जिज्ञासु परब्रह्ममय हो जाते हैं।''

इस बार पूनम दर्शन दिल्ली व अमदावाद दो जगहों पर हुआ। **६ व ७ जून** को **रामलीला मैदान, दिल्ली** में साधकों को पूनम-दर्शन का लाभ मिला। यहाँ पूज्य बापूजी बोले : ''रुपयों से, पैसों से, पदोन्नति से, चुनाव जीतने से या मंत्रीपद भोगने से वह चिन्मय तत्त्व जागृत नहीं होता, जिसको जागृत करने के लिए मनुष्य-जीवन मिला है।''

७ जून की शाम को **अमदावाद आश्रम** में पूर्णिमा दर्शन-सत्संग का लाभ सत्संगियों को प्राप्त हुआ। **११ जून** को पूज्यश्री का **गोरखपुर (उ.प्र.)** में आगमन हुआ। १३ साल से दीर्घ प्रतीक्षा कर रहे गोरखपुर के भक्तों की प्रतीक्षा का बाँध और कितनी देर टिकता ? आखिर जाहिर सत्संग के पहले एकांतवास में ही बड़ी संख्या में साधक आश्रम में उमड़ पड़े और पूज्यश्री की बरसती अमीदृष्टि ने उन्हें शांत व तृप्त किया। **१३ व १४ जून** को **गोरखपुर** में सत्संग-गंगा प्रवाहित हुई।

१६ व १७ जून को प्रभु श्रीरामजी की नगरी **अयोध्या** में रामभक्तों को रामकथा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँ भी १३ साल के इंतजार के बाद हुए पूज्यश्री के आगमन से अयोध्या की जनता व साधुसमाज हर्षोल्लसित था। यहाँ की जनता को संतों की गरिमा से अवगत कराते हुए गुरुदेव बोले : ''तीर्थों को तीर्थत्व संत ही प्रदान करते हैं। संतों की तपस्या से भूमि में तीर्थत्व आता है।''

यहाँ साधुओं के लिए विशाल भंडारे का आयोजन हुआ। वस्त्र, दक्षिणा आदि देकर उन्हें सम्मानित भी किया गया।

१८ जून का एक सत्र **गोण्डावासियों** के नाम रहा। आखिरी समय पर तय हुए इस कार्यक्रम में भी इतनी बड़ी संख्या में लोग उमड़ पड़े कि आश्रम भी छोटा पड़ गया।

और फिर **१९ से २१ जून** तक **लखनऊ** में बही भक्ति-प्रेम-ज्ञान की त्रिवेणी। तीनों दिन श्रद्धालुओं का ऐसा हुजूम उमड़ा कि आयोजक पंडाल बढ़ाते रहे और सत्संगी सज्जनों की बढ़ती संख्या के आगे पंडाल छोटा साबित होता गया। पूज्य बापूजी ने भगवत्स्मृति की विलक्षण महिमा बताते हुए कहा : ''भगवत्स्मृति आपके चित्त को राग और द्वेष से ऊपर उठाकर चित्त में भगवद्रस पैदा कर देती है। परमात्मा की स्मृति करने से आपकी जीवन-धारा कभी क्षीण नहीं होगी, दवाओं से जीवन उधार नहीं लेना पड़ेगा, बुद्धि समाप्त नहीं होगी, किताबों से बुद्धि बटोरने की मेहनत नहीं करनी पड़ेगी अपितु आपकी बुद्धि ऐसे ही बढ़ती चली जायेगी। शरीर में दिव्य घटक उत्पन्न होंगे जिससे स्वास्थ्य के लिए आपको टॉनिक और शक्ति की दवाएँ लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। हमेशा आनंद रहेगा जिससे विकारों की पराधीनता नहीं रहेगी।''

२१ व २२ जून को शिवनगरी **काशी उर्फ वाराणसी** की जनता शिवस्वभाव में जगानेवाला सत्संग पाकर धन्य-धन्य हो गयी। सत्संगी इतनी बड़ी संख्या में उमड़े कि पंडाल तो क्या बढ़ायें, मैदान ही छोटा पड़ गया। शिवमय, कल्याणमय सनातन संस्कृति में **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** के व्यापक, उदार सिद्धांत को उजागर करते हुए पूज्यश्री बोले : ''जैसे आकाश सबका, जमीन सबकी, गंगाजी सबकी, सूरज और चंद्रमा सबके, ऐसे भगवान और भगवान के प्यारे संत भी सभीके होते हैं।

सब तुम्हारे तुम सभीके, फासले दिल से मिटा दो।

हे प्रभु ! आनंददाता !! ज्ञान हमको दीजिये।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिये ॥
निंदा किसीकी हम किसीसे भूलकर भी ना करें।
ईर्ष्या कभी भी हम किसीसे भूलकर भी ना करें ॥
सत्य बोलें झूठ त्यागें मेल आपस में करें।
दिव्य जीवन हो हमारा यश तेरा गाया करें ॥
हे प्रभु ! आनंददाता !!...'' ❑

'भगवान श्रीहरि कीर्तन में भक्तों के साथ आनंद में सराबोर होकर नाचते हैं ।'

– संत एकनाथजी महाराज

आनंद, उत्साह, प्रभुभक्ति, सादगी व अनुशासनप्रियता का प्रतीक ऐसी बापूजी के प्यारे भक्तों की संकीर्तन यात्राएँ ।
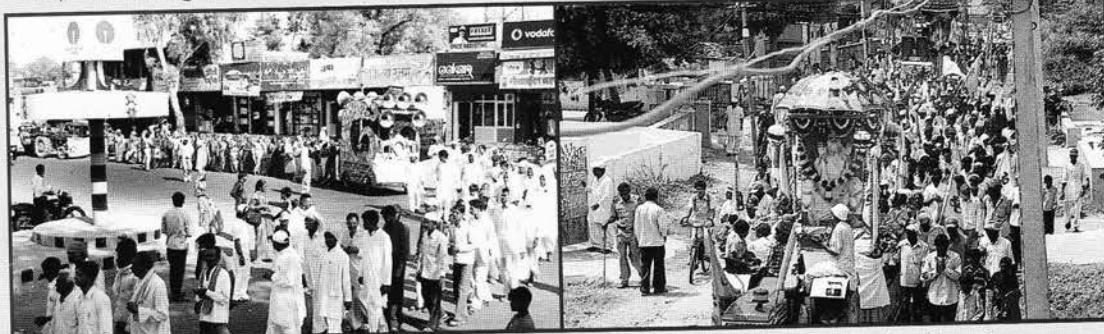
शाजापुर (म.प्र.) | बायड, जि. साबरकांठा (गुज.)
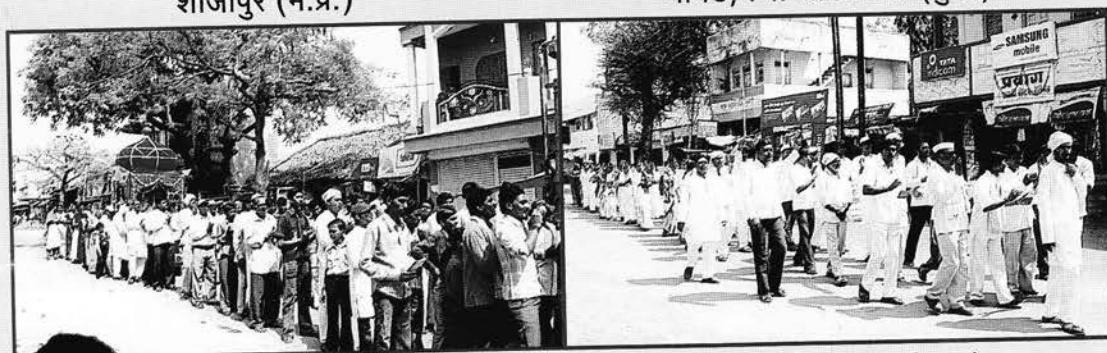
पलसूद, जि. बड़वानी (म.प्र.) | चाकूर, जि. लातूर (महा.)

चिजगाम, जि. नवसारी (गुज.) | देवगढ़ बारिया, जि. दाहोद (गुज.)

भोपाल (म.प्र.) में 'ऋषि प्रसाद सम्मेलन' का आयोजन
तथा बालाघाट (म.प्र.) में 'ऋषि प्रसाद अभियान' का श्रीगणेश ।

पूज्य बापूजी के शिष्यों द्वारा अविरत चलाये जा रहे विविध सेवाकार्यों की कुछ झाँकियाँ

1 July 2009
RNP. No. GAMC 1132/2009-11
WPP LIC No. CPMG/GJ/41/09-11
RNI No. 48873/91
DL (C)-01/1130/2009-11
WPP LIC No. U (C)-232/2009-11
MH/MR-NW-57/2009-11
MR/TECH/WPP-42/NW/09-11

Posting at PSO Ahmedabad between 25th of preceding month to 10th of current month. * Posting at ND PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.

बालाघाट (म.प्र.) में अनाज-वितरण तथा चाकूर, जि. लातूर (महा.) में छाछ-वितरण।
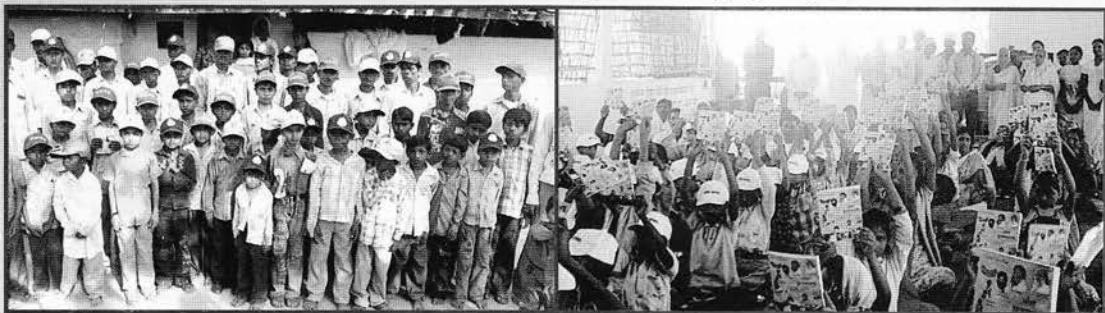
सिर के ज्ञानतंतुओं की तेज धूप से रक्षा हेतु पुछियावाड़ा, जि. डुंगरपुर (राज.) में निःशुल्क टोपी-वितरण तथा नागपुर (महा.) में टोपी व लेखन-पुस्तिकाओं का निःशुल्क वितरण।

अलीराजपुर (म.प्र.) तथा जयपटना, जि. कालाहाण्डी (उड़ीसा) के निर्धन क्षेत्रों में विशाल भंडारे व आर्थिक सहायता का वितरण।

कोपरखैरणे, नवी मुंबई तथा माधापर, जि. कच्छ (गुज.) में सामूहिक यज्ञ सम्पन्न हुए। कोपरखैरणे में यज्ञ-समाप्ति पर भक्तों को यज्ञकुण्ड से शिव-शक्ति की प्रतिमा मिली।

आश्रम के सेवाकार्यों की विस्तृत जानकारी हेतु आश्रम की वेब-साइट www.ashram.org देखें।